



भारत का विधि आयोग

भोटखान अधिनियम, 1988 (1988 का 59) को कुछ कमियों को दूर करना

विषय पर

एक सौ उन्नचासवर्गी रिपोर्ट

1994

विषय-वस्तु

भूमिका

1.1 मोटरयान अधिनियम, 1939 (1939 का 4), जो इंग्लिश रोड ट्रैफिक एक्ट, 1930¹ पर आधारित है, लगभग 50 वर्ष तक कानून-पुस्तक का अंग रहा है। हाल ही में, मोटरयानों से संबंधित कानून को, मोटरयान अधिनियम, 1988 (1988 का 59), अधिनियमित करके पुनः तैयार किया गया है किन्तु नए अधिनियम को क्रियान्वित करने के दौरान कुछ कठिनाइयों और व्यावहारिक मुश्किलों का अनुभव हुआ है यद्यपि, इस कानून की उम्र अभी केवल पांच वर्ष हुई है। इस रिपोर्ट में उक्त अनुभव के आधार पर अधिनियम में आवश्यक संशोधनों पर चर्चा की जा रही है।

1.2 मोटरयानों से होने वाली दुर्घटनाओं में वृद्धि और ऐसी दुर्घटनाओं के शिकार लोगों और उनके आश्रितों की दयनीय दशा पर उच्चतम न्यायालय ने अनेक मामलों¹ में टिप्पणियां की हैं। गत कुछ वर्षों में, देश में मोटर दुर्घटनाओं की संख्या में चिताजनक रूप से वृद्धि हुई है। लगभग हर रोज समाचारपत्रों में सड़क दुर्घटनाओं की दुखभरी गाथाएं पढ़ने को मिलती हैं। 1989-91 के दौरान, देश में, 8,37,601 सड़क दुर्घटनाएं हुई थीं। उक्त अवधि में मरने वालों की संख्या 1,65,222 थी। भारत में सड़क दुर्घटनाओं और उनमें मरने वाले व्यक्तियों के 1989-91 के राज्यवार आंकड़े उपाबन्ध 7 में दिए गए हैं। अतः, ऐसी दुर्घटनाओं के शिकार व्यक्तियों अथवा उनके विधिक प्रतिनिधियों को जिस तंत्र के माध्यम से क्षतिपूर्ति की जाती है उसके सुधार की आवश्यकता है जिससे कि उन्हें जो क्षति होती है उसके लिए उन्हें प्रतिकर के रूप में अतिशीघ्रता से उचित रकम प्राप्त हो सके। सभी लोग यह अनुभव करते हैं कि मोटर दुर्घटनाओं के शिकार व्यक्तियों को और घटना में मृत्यु होने पर, उनके विधिक प्रतिनिधियों को, दुर्भाग्यपूर्ण हादसे के परिणामस्वरूप जो गंभीर सदमा होता है। उसके अतिरिक्त, उन्हें देय प्रतिकर न्यायालय की प्रक्रिया के माध्यम से प्राप्त करने के लिए अनेक वर्षों तक कानूनी लड़ाई के कष्टों और अनिश्चितताओं का सामना करना पड़ता है। इधर कुछ वर्षों से, लोक अदालतें इस प्रकार के मामलों का निपटारा कर रही हैं किन्तु यह पता लगा है कि दुर्घटनाग्रस्त व्यक्तियों या उनके विधिक प्रतिनिधियों को उनके द्वारा दावा किए गए प्रतिकर की एक छोटी सी रकम प्राप्त करके संतुष्ट होने के लिए मजबूर होता पड़ता है। ऐसे व्यक्तियों के पास और कोई चारा ही नहीं होता सिवाय इसके कि वे विवाद का निपटारा कर लें क्योंकि उन्हें यह पता नहीं रहता कि प्रतिकर पाने के लिए उन्हें कितने वर्षों तक मुकदमा लड़ना होगा। इसी पृष्ठभूमि में, और अन्य संबंधित बातों को ध्यान में रखते हुए, विधि आयोग ने, स्वतः ही मोटरयान अधिनियम से संबंधित समस्याओं का समाधान निकालने के लिए और इस विषय पर उचित सिफारिशें करने के लिए यह कार्रवाई की है जिसकी चर्चा हम आगे करेंगे।

1.3 भारत में, सदोष मृत्यु विषय पर अनेक कानून हैं।² इनमें से, धातक दुर्घटना अधिनियम, 1855 का संबंध सामान्यतया सदोष मृत्युओं के लिए क्षतिपूर्ति के दायित्व से संबंधित है (जिसके अन्तर्गत मोटर दुर्घटनाओं में होने वाली मृत्युएं भी हैं)। विधि आयोग ने, अपनी 111वीं रिपोर्ट में³ इस अधिनियम के उन उपबन्धों पर विचार किया था जिनका संबंध उसी प्रकार के दायित्व से है जिन पर हम यहां विचार कर रहे हैं और आयोग ने, कुछ सिफारिशें भी की थीं किन्तु उन्हें अभी तक कार्यान्वित नहीं किया गया है। अतः, पह उचित होगा कि सरकार दोनों रिपोर्टों पर एक साथ विचार करे जिससे कि दोनों कानूनों में जो असंगतियां या विरोध हैं उन्हें दूर किया जा सके। वर्तमान विचारणीय विषय पर जिन अन्य कानूनों में के उपबन्ध हैं उनका उल्लेख हम इस रिपोर्ट में उचित स्थान पर करेंगे। मोटरयान अधिनियम में और भी कुछ कमियां हैं जिन्हें दूर करने की आवश्यकता है। हम यहां उनमें से कुछ महत्वपूर्ण कमियों का संक्षेप में जिक्र करना चाहते हैं।

1.4 मोटरयान अधिनियम, 1988 की धारा 140 में “तुटिविहीनता” के आधार पर, प्रतिकर की रकम का भुगतान करने के बारे में उपबंध किया गया है किन्तु इस धारा का क्षेत्र सीमित है क्योंकि यह केवल वहां लागू होती है जहां दुर्घटनाग्रस्त व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है या वह स्थायी रूप से निःशक्त हो जाता है।

स्थायी निःशक्तता से भिन्न मामलों में क्षतियों के संबंध में किसी अनुतोष का उपबंध इस धारा में नहीं है। आयोग ने यह आवश्यक समझा है कि इस धारा का क्षेत्र और विस्तार और व्यापक हो। मृत्यु और स्थायी निःशक्तता दोनों ही दशाओं में, प्रतिकर की रकम अपर्याप्त है और उस पर पुर्णविचार अपेक्षित है।

1.5 मोटरयान अधिनियम, 1988 की धारा 147 में तुटिपूर्ण प्रारूपण, अस्पष्टता और अतिलंघन के दोष हैं। प्रारूपण की इन तुटियों और अस्पष्टताओं के परिणामस्वरूप, धारा 147 के निर्वचन में कठिनाई उत्पन्न हुई है और उसमें संशोधन की आवश्यकता है।

1.6 मोटरयान अधिनियम, 1988 के अन्तर्गत मोटर दुर्घटना में किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाने पर मृतक के संबंधी और आश्रित प्रतिकर का दावा करने के हकदार होते हैं। धातक दुर्घटना अधिनियम, 1855 और रेल अधिनियम में भी इसी प्रकार के उपबंध हैं किन्तु मोटरयान अधिनियम, 1988 के अन्तर्गत, संबंधी और आश्रित की परिभाषाओं में एकरूपता नहीं है। अतः, इस बात की आवश्यकता है कि इन पदों में एकरूपता रहे।

1.7 धारा 167 के अधीन उपबंधित उपचारों का चयन सहायक नहीं है, विशेष रूप से तब जब कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923, कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 तथा अन्य कानूनों में अनेक विभिन्न उपबंध हैं। इसके कारण धारा 167 का पुनः प्रारूपण करने की आवश्यकता है।

1.8. उपरोक्त कठिनाईयों ने, विधि आयोग को स्वतः इन प्रश्नों पर पुनः विचार करने के लिए प्रेरित किया ताकि विधि सरल हो, विद्यमान कानून की कमियां दूर हो जाएं तकनीकी बातों के कारण मुकदमें बाजी रुके और 1988 के अधिनियम में, जो विसंगतियां हैं वे दूर हो जाएं।

1.9 उपरोक्त उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए, हम मोटरयान अधिनियम, 1988, की परीक्षा करने और उसकी कमियों का विशेषण करने के लिए अग्रसर हो रहे हैं। वर्तमान रिपोर्ट मोटरयान अधिनियम, 1988 उन उपबंधों तक सीमित है जो उस स्थिति में भोटरयानों के बीमाकर्ताओं, स्वामियों और प्रयोगकर्ताओं द्वारा उपगत दायित्व से संबंधित हैं, जब किसी व्यक्ति या सम्पत्ति को किसी यान दुर्घटना में नुकसान पहुंचता है।

1.10 ध्यान रहे कि आयोग ने, अपनी 51वीं, 85वीं, 106वीं और 199वीं रिपोर्ट में मोटरयान अधिनियम और उसके आनुषंगिक उपबंधों में संशोधन करने के संबंध में अनेक सिफारिशें की हैं।

पाद टिप्पणी—अध्याय 1

1. उदाहरण के लिए राज्य बनाम दर्शन देवी एंग्राइंगर० 1979, उच्च न्यायालय, 1865 तथा कौनकोर्ड इंश्यरेंश कम्पनी बनाम निर्मला देवी, एंग्राइंगर० 1979, उच्च न्यायालय, 1666 देखिए।

2. इनके नाम हैं विधिक प्रतिनिधि वाद अधिनियम (1855 का 12), धातक दुर्घटना अधिनियम (1855 का 13), कर्मकार प्रतिकर अधिनियम (1923 का 84), नियोजक दायित्व अधिनियम (1938 का 34), कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, (1948 का 34), वाणिज्य पोत परिवहन अधिनियम (1958 का 44), वायुवहन अधिनियम (1927 का 69), मोटरयान (1988 का 59), भारतीय रेल अधिनियम (1979 का 24), और लोक दायित्व बीमा अधिनियम (1991 का 6)।

3. 111वीं रिपोर्ट, तारीख 16-5-1985, जिसमें सिफारिश की गई है कि धातक दुर्घटना अधिनियम, 1855 के स्थान पर एक नया कानून बनाया जाए जिसका नाम “सदोष मृत्यु अधिनियम, 1985” कहा जाए।

अध्याय 2

तुटिविहीनता-दायित्व

2.1 1988 के अधिनियम के अध्याय 10 का संबंध कुछ मामलों में तुट नहीं होने पर दायित्व से है और अधिनियम के अध्याय 11 का शीर्षक “पर व्यक्ति जोखिम के संबंध में मोटरयान बीमा” है। अध्याय 10 की धारा 140 निम्नलिखित रूप में है:—

“(1) जहां मोटरयान या मोटरयानों के उपयोग में हुई दुर्घटना के परिणामस्वरूप, किसी व्यक्ति की मृत्यु या स्थायी निःशक्तता हुई है वहां, यथास्थिति, यान का स्वामी या यानों के स्वामी ऐसी मृत्यु या निःशक्तता के बारे में, प्रतिकर का संदाय इस धारा के उपबंधों के अनुसार संयुक्ततः और पृथकः करने के लिए दायी होंगे।

(2) ऐसे प्रतिकर की रकम जो किसी व्यक्ति की मृत्यु के बारे में उपधारा (1) के अधीन संदेय होगी, पच्चीस हजार रुपए की नियत राशि होगी और किसी व्यक्ति की स्थायी निःशक्तता के बारे में उस उपधारा के अधीन संदेय प्रतिकर की रकम, बारह हजार रुपए की नियत राशि होगी।

(3) उपधारा (1) के अधीन प्रतिकर के लिए किसी दावे में दावेदार से यह अपेक्षा नहीं की जाएगी कि वह यह अभिवाकृद और यह सिद्ध करे कि वह मृत्यु या स्थायी निःशक्तता, जिसके बारे में प्रतिकर का दावा किया गया है, संबंधित यान या यानों के स्वामी या स्वामियों के या किसी अन्य व्यक्ति के किसी दोषपूर्ण कार्य, उपेक्षा या व्यतिक्रम के कारण हुई थी।

(4) उपधारा (1) के अधीन प्रतिकर के लिए दावा, यथास्थिति, ऐसे व्यक्ति के जिसकी मृत्यु या स्थायी निःशक्तता के बारे में दावा किया गया है, किसी दोषपूर्ण, उपेक्षा या व्यतिक्रम के कारण विफल नहीं होगा और ऐसी मृत्यु या स्थायी निःशक्तता के बारे में वसूलीय प्रतिकर की मात्रा ऐसी मृत्यु या स्थायी निःशक्तता के उत्तरदायित्व में ऐसे व्यक्ति के अंश के आधार पर कम नहीं की जाएगी।

2.2 उपरोक्त उपबंधों को पढ़ने से यह प्रतीत होता है कि तदर्थ प्रतिकर की रकम के भुगतान का दायित्व तुटिविहीनता के सिद्धांत पर आधारित है। इस प्रकार, किसी व्यक्ति की मृत्यु या स्थायी निःशक्तता के संबंध में, जो किसी दुर्घटना का परिणाम हो, इस धारा के अधीन दावे में, दावाकर्ता से यह अपेक्षित नहीं है कि वह यह सावित करे कि ऐसी घटना यान के स्वामी या स्वामियों अथवा किसी अन्य व्यक्ति¹ के सदोष कार्य, उपेक्षा या तुटि के कारण हुई थी अथवा उसकी अपनी कोई मूल उपेक्षा या तुटि नहीं थी। मृत्यु की दशा में, नियत की गई प्रतिकर की रकम 25,000 रुपए और स्थायी निःशक्तता की दशा में 12,000 रुपए है। उपरोक्त उपबंध का उद्देश्य इन आधारों पर कि पक्षकारों में से किसकी उपेक्षा थी अथवा आहत या मृत्यु का कितने प्रतिकर का बाद है, लम्बे विचारों से बचना है। इसके अतिरिक्त, इस बात पर भी ध्यान नहीं देना है कि मोटरयान के स्वामी की वित्तीय सामर्थ्य है या नहीं। दुर्घटनाग्रस्त व्यक्ति या उसके विधिक प्रतिनिधि बीमा कम्पनी से धारा 140 (2) में बताई गई रकम बिना इस बात पर ध्यान दिए प्राप्त करने के हकदार हैं कि बाहन के स्वामी की कोई मूल या कोई उपेक्षा थी या नहीं²। यह उपबंध दुर्घटनाग्रस्त व्यक्ति को यान के स्वामी से और अधिक प्रतिकर दावा करने से नहीं रोकता यदि वह ऐसा सावित करे³। फिर भी, धारा 140 की दो सीमाएँ हैं—

(क) यह धारा केवल वहां लागू होती है जहां किसी मोटरयान के उपयोग से होने वाली दुर्घटना के कारण किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है या वह स्थायी रूप से निःशक्त हो जाता है;

(2) धारा में उपबन्धित प्रतिकर की रकम नियत रकम है जिसका धारा में उल्लेख है।

2.3 अनुभव यह दर्शाता है कि विभिन्न प्रकार की मोटर दुर्घटनाएं ऐसी होती हैं जिनमें दुर्घटनाग्रस्त व्यक्ति गंभीर रूप से आहत हो जाता है किन्तु जिसके परिणामस्वरूप न तो वह स्थायी रूप से निःशक्त होता है और न उसकी मृत्यु होती है। अतः, यह प्रश्न उठता है कि क्या ऐसे मामलों को सामान्य सिविल न्यायालय में लड़ने के लिए मजबूर किया जाना चाहिए या ऐसे दुर्घटनाग्रस्त व्यक्ति भी तदर्थ रकम का दावा करने के हकदार होने चाहिए। हर कोई यह बात जानता है कि सड़क पर चलने वाले साईकिल और तिपहियां चलाने वाले अधिकतर लोग हमारे समाज के गरीब वर्ग के होते हैं और वही सड़क दुर्घटना के शिकार होते हैं। ऐसे शिकार व्यक्तियों को भी, स्थायी निःशक्तता के मामलों की तरह चिकित्सा व्यय, आदि उठाना पड़ता है और क्षतियों के कारण उन्हें अपने काम-काज से लम्बे समय तक अनुपस्थित रहना पड़ता है, जिसके परिणामस्वरूप कमाई का नुकसान होता है। यदि उन्हें जिन्हें अपने नित्य के भोजन के लिए रोज की मजदूरी पर निर्भर रहना पड़ता है, ऐसा नुकसान उठाना पड़े तो, उनके परिवारों को भुगतना पड़ता है, किन्तु धारा 140 में ऐसे वर्ग के लिए किसी तदर्थ अनुतोष की व्यवस्था नहीं की गई है। इसके परिणामस्वरूप, समाज के गरीब वर्ग को बहुत कठिनाई होती है और कष्ट उठाना पड़ता है। अतः, हमारा यह विचार है कि धारा 140 में जिन क्षतियों का उल्लेख है उनसे कम क्षतियों के लिए भी कुछ कानूनी प्रतिकर की रकम विहित की जानी चाहिए।

2.4 मृत्यु की दशा में, नियत की गई 25,000 रुपए की रकम और स्थायी निःशक्तता के लिए 12,000 रुपए की रकम अत्यन्त अपर्याप्त है⁵। जब कोई व्यक्ति रेल दुर्घटना में मरता है तो उसे दुर्घटना प्रतिकर नियम, 1989 की अनुसूची में वर्णित प्रतिकर मिलता है, जो मृत्यु या स्थायी निःशक्तता की अवस्था में दो लाख रुपए तक होता है⁶।

यदि वायुयान दुर्घटना में मरने वाले की आयु 12 वर्ष से कम होती है तो उसके विधिक प्रतिनिधि 2.5 लाख की रकम के हकदार होते हैं, और यदि उसकी आयु 12 वर्ष से अधिक हो तो मुआवजा 5 लाख रुपए तक होगा⁷। किन्तु यदि किसी व्यक्ति की मृत्यु मोटररायान की दुर्घटना में हो जाती है तो उसे देय प्रतिकर की रकम इतनी तुच्छ है कि वह वायुयान दुर्घटना की दशा में, देय रकम का एक अंश भी नहीं होती। ऐसी असमानता का कोई विधिपूर्ण न्यायीचित्य प्रतीत नहीं होता। दोनों ही दशाओं में भुगतान किया जाने वाला मुआवजा बीमा से उपलब्ध होता है। ऐसी असमान और विषम स्थिति को दूर करने की आवश्यकता पर उच्चतम न्यायालय ने, मंजुश्री के मामले में बल दिया है।

“हमारा देश किसी बहुमूल्य जीवन की हानि को सहन नहीं कर सकता क्योंकि हम एक प्रगतिशील समाज की रचना कर रहे हैं और यदि किसी व्यवसाय, कार्यालय, कारोबार या किसी अन्य वृत्ति में संलग्न व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है तो एक शून्य की स्थिति पैदा हो जाती है जिसके परिणामस्वरूप, निश्चित रूप से संबंधित उद्योग या वृत्ति को गंभीर धक्का लगता है। इतना ही नहीं, किसी कर्मकार की मृत्यु से उस परिवार के लिए, जिसे वह अपने पछे छोड़ जाता है, गंभीर आर्थिक समस्या पैदा हो जाती है। इन परिस्थितियों में यह न्याय पूर्ण और उचित ही है कि विधान-मंडल एक उपयुक्त उपबन्ध बनाए जिससे कि किसी नागरिक के बहुमूल्य जीवन का सही परिस्त्रेश्य में उचित मूल्यांकन करके न कि एक कृतिम गणितीय फार्मले के आधार पर, मानव जीवन का मूल्यांकन करके प्रतिकर दिया जाए। यह सर्वोदित है कि वायुयान से यात्रा करने वाले व्यक्ति की मृत्यु हो जाने पर एक लाख रुपए या उससे अधिक की रकम का मुआवजा मिलता है किन्तु जहां मृत्यु वायुयान दुर्घटना में होकर मोटर वाहन के कारण होती है वहां वह मात्र दो हजार रुपए का हकदार है। क्या यह इस बात का दोषक नहीं है कि विमान से यात्रा करने वाले यात्री का जीवन केवल इसलिए मूल्यवान है क्योंकि उसने एक विशिष्ट प्रवहण चुना है और उसके जीवन का मूल्य बहुत कम हो जाता है यदि उसने कम मूल्यवान प्रवहण, जैसे कि मोटर वाहन चुना है। ऐसा असम्यक भेदभाव किसी न्यायिक अथवा सामाजिक आत्मा को निश्चित रूप से धक्का पहुंचाने वाला है।

और फिर भी, मोटर वाहन अधिनियम की धारा 95(2)(ब) ऐसे भेदभाव को बल देती प्रतीत होती है। हम यह सुझाव भी देना चाहते हैं कि इसकी अपेक्षा कि बीमा कम्पनियों के दायित्व की मानव जीवन के मूल्य के

बराबर रकम विनिर्दिष्ट करके सीमित किया जाए, यह रकम प्रत्येक भामले की विशेष परिस्थितियों में, न्यायालय द्वारा अवधारणा के लिए छोड़ देनी चाहिए”¹⁰ उपरोक्त विचारों का एक पश्चात्वर्ती निर्णय¹⁰ में भी समर्थन किया गया है। इसके अतिरिक्त, जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, यह बात असाम्यापूर्ण है, कि वह व्यक्ति जो ऐसी क्षति सहन करते हैं जिनके परिणामस्वरूप मृत्यु या स्थायी निःशक्तता नहीं होती, बिना किसी अनुतोष के रह जाए। ऐसे व्यक्तियों को भी क्षतिपूर्ति के रूप में तुरन्त तदर्थ सहायता की आवश्यकता है।

2.5 अतः, यद्यपि, धारा 140 के अधीन प्रतिकर की रकम में वृद्धि की जानी चाहिए, यद्यपि, हमारा यह विचार नहीं है कि वायुयान और रेल दुर्घटनाओं के संबंध में मुआवजे की दरों को यहां उपयोगी रूप से ग्रहण किया जा सकता है। जहां तक विमान दुर्घटनाओं का संबंध है,—

(क) उपबंध अंतरराष्ट्रीय कंवेशनों से शासित है,

(ख) वहन किए जाने वाले यात्री साधारणतया अतिसंपन्न वर्ग के होते हैं जिनकी मृत्यु या क्षति से परिणामित हानि का मूल्यांकन अधिसूचित आंकड़ों के अनुसार किए जाने की संभावना है, और

(ग) वाहक को छूट है कि वह यह सावित करके कि नुकसान क्षतिग्रस्त व्यक्ति द्वारा, या उसकी उपेक्षा के कारण हुआ था, स्वयं को दायित्व से बचाने से हुआ था¹¹। जहां तक कि दुर्घटनाओं का संबंध है, उनमें दुर्घटनाग्रस्तों की संख्या बहुत बड़ी होती है और ऐसे मामलों में, लम्बी कार्रवाईयों से बचने के लिए, “टुटिविहीनता” के आधार पर प्रतिकर की तदर्थ दर नियत की गई है। दूसरी ओर, पृथक-पृथक् प्रतिकर का निर्धारण, मोटररायन दुर्घटनाओं की दशा में कम कठिन है और अधिनियम के अन्तर्गत एक व्यापक अधिनिर्णयक तंत्र का गठन भी किया गया है। रेल अधिनियम के अन्तर्गत भी नियमों¹² में विनिर्दिष्ट से भिन्न क्षतियों की दशा में, पृथक-पृथक् निर्धारण की व्यवस्था है। सिद्धांत रूप में भी, मृतक/आहत की परिस्थितियों पर ध्यान दिए बिना, अंत में, एक निश्चित मुआवजे का कठोर फार्मला, गलत और न्यायविरुद्ध प्रतीत होगा।

2.6 उपरोक्त वातों को ध्यान में रखते हुए और इस दृष्टि से भी कि धारा 140 में जिसका उपबंध किया गया है वह “टुटिविहीनता दायित्व” है जिसका, जांच और अधिनिर्णय के पश्चात्, और अधिक प्रतिकर का दावा करने पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं है, यह स्पष्ट है कि इस धारा के अधीन देय प्रतिकर की रकम अपर्याप्त है और इसलिए, इसे बढ़ाने की आवश्यकता है। हमारा यह मत है कि धारा 140 में समय उल्लिखित से कम गंभीर क्षतियों की बाबत भी उपबंध करने के लिए उक्त धारा में संशोधन किया जाना चाहिए। अतः, यह सिफारिश की जाती है कि धारा 140(2) के अधीन देय प्रतिकर की रकम निम्नलिखित प्रकार से नियत की जाए:—

(1) मृत्यु की दशा में —————— 1,00,000 रुपए

(2) स्थायी निःशक्तता की दशा में —————— 60,000 रुपए

(3) गंभीर क्षति की दशा में जिसका परिणाम मृत्यु

या स्थायी निःशक्तता न हो —————— 5,000 रुपए।

पारं टिप्पणी—अध्याय 2

1. धारा 140 की उपधारा 3.

2. धारा 140 की उपधारा 4.

3. धारा 140 में बीमा कंपनी का उल्लेख नहीं है किन्तु अध्याय 2 में धारा 47 की भाषा से यह अर्थ निकलता है।

4. धारा 141.

5. यह बात ध्यान योग्य है कि हाल ही के लोक दायित्व बीमा अधिनियम (1991) का 6) की अनुसूची में ऐसे परिसीमाएं सम्मिलित की गई हैं। तथापि, यह केवल अस्थायी आंशिक निःशक्तता के लिए और प्राइवेट संपत्ति की नुकसानों के लिए अनुतोष प्रदान करता है।

6. रेल दुर्घटना अधिनियम, 1989 की धारा 127 तथा उसके अधीन बनाए गए नियम।

7. भारत के राजपत्र, भाग 2, खंड 3, उपखंड (2) तारीख 17-4-1994 के पृष्ठ 1943 पर सिविल विमानन और पर्यटन संबंध की अधिसूचना देखिए।

8: ए०आई०आर० 1977 उच्च० न्याय० 1158 जो 1988 के अधिनियम की धारा 140 के संदर्भ में नहीं बल्कि 1939 के अधिनियम की धारा 95 (2) में वर्णित कानूनी बीमा लाभ की परिसीमाओं की बाबत एक उलझनपूर्ण स्केल के संदर्भ में माल और सवारी सार्वजनिक वाहनों के संबंध में बीमा लाभ बीमाकृत के दायित्व का सहभागी हीना चाहिए।

9. इस संदर्भ में, विधि आयोग की 83वीं रिपोर्ट में की गई सिफारिशें भी देखें। विधान संडल ने तर्द्य प्रतिकर के रूप में निश्चित राशियां विहित की हैं और पक्षकार उच्चतर प्रतिकर के लिये अपनी इच्छा से मुकदमा करन के लिये स्वतत्त्व हैं।

10. कुह मुहम्मद बनाम अहमद कुट्टी, ए०आई०आर० 1987 उच्च० न्याय० 2158.

11. बायु वहन अधिनियम, 1972 की प्रथम अनुसूची का नियम 22.

12. रेल दुर्घटना (प्रतिकर) नियम, 1990 का नियम 3(3) और उसके अधीन, अनुसूची 1

अध्याय 3

अनिवार्य बीमा लाभ

3. 1 1988 के अधिनियम का अध्याय 10 कुछ दण्डाओं में दृष्टिविहीनता दायित्व से संबंधित है और अध्याय 11 पर-व्यक्ति जोखिम संबंधी मोटरयान बीमा के बारे में है। अध्याय 12 दावा अधिकरणों के गठन, उनके द्वारा अपनाई जाने वाली प्रक्रिया और उसके आनुषंगिक अन्य उपबंधों की बाबत है। यद्यपि, अध्याय 10 और 11 के शीर्षक भिन्न-भिन्न हैं पर एक बात सामान्य है कि वे बीमा लाभ में से मोटरयान दुर्घटनाओं के शिकार व्यक्तियों के दावों के भुगतान से संबंधित हैं। 1939 के अधिनियम की धारा 95 और 1988 के अधिनियम की धारा 147 बीमा पालिसी की अपेक्षाओं और उनके अधीन दायित्वों की सीमाओं का उल्लेख करती है। दर्तमान अध्ययन का संबंध 1988 के अधिनियम की धारा 147(1) की भाषा से है जो 1939 के अधिनियम की धारा 95(1) की भाषा से बहुत मिलती है। दोनों के बीच एकमात्र तात्त्विक अन्तर यह है कि धारा 147(1) में 1939 के अधिनियम की धारा 95(1) के परन्तुक का खंड (2) नहीं है। 1988 के अधिनियम की धारा 147 की उपधारा (1) को तुरंत संदर्भ के लिए नीचे उद्धृत किया जा रहा है:—

“(1) इस अध्याय की अपेक्षाओं का अनुपालन करने के लिए बीमा पालिसी ऐसी होनी चाहिए, जो—

(क) ऐसे व्यक्ति द्वारा, जो प्राधिकृत बीमाकर्ता है, दी गई है, और

(ख) पालिसी में विनिर्दिष्ट व्यक्ति या वर्ग के व्यक्तियों की उपधारा (2) में विनिर्दिष्ट विस्तार तक निम्नलिखित के लिए बीमा करती है, अर्थात्:—

(i) उस यान का किसी सार्वजनिक स्थान में उपयोग करने से किसी व्यक्ति की मृत्यु या शारीरिक क्षति होने अथवा किसी पर-व्यक्ति की किसी संपत्ति को नुकसान पहुंचाने की बाबत उसके द्वारा उपगत दायित्व;

(ii) उस यान का किसी सार्वजनिक स्थान में उपयोग करने से किसी सार्वजनिक सेवा यान के किसी यात्री की मृत्यु या शारीरिक क्षति :

परंतु कोई पालिसी—

(i) उस पालिसी द्वारा बीमाकृत किसी व्यक्ति के कर्मचारी की उसके नियोजन से और उसके दौरान हुई मृत्यु के संबंध में अथवा ऐसे कर्मचारी को उसके नियोजन से और उसके दौरान हुई शारीरिक क्षति के संबंध में ऐसे दायित्व को पूरा करने के लिए अपेक्षित नहीं होगी, जो किसी ऐसे कर्मचारी की मृत्यु या उसकी शारीरिक क्षति की बाबत कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 (1923 का 8) के अधीन होने वाले दायित्व से भिन्न है जो—

(क) यान चलाने में नियोजित है, या

(ख) सार्वजनिक सेवा यान की दशा में, उस यान के कंडक्टर के रूप में, अथवा उस यान पर टिकटों की जांच करने में नियोजित है, या

(ग) माल वाहन की दशा में, उस यान में वहन किया जा रहा है; या

(ii) किसी संविदात्मक दायित्व को पूरा करने के लिए अपेक्षित नहीं होगी।

स्पष्टीकरण—शंकाओं को दूर करने के लिए यह घोषित किया जाता है कि किसी व्यक्ति की मृत्यु या शारीरिक क्षति अथवा पर-व्यक्ति की किसी संपत्ति को नुकसान को इस बात के होते हुए भी कि जिस व्यक्ति की मृत्यु हुई है या जिसे क्षति पहुंची है या जिस संपत्ति को नुकसान पहुंचा है वह दुर्घटना के समय सार्वजनिक

स्थान में नहीं था या थी, उस दशा में सार्वजनिक स्थान में यान के उपयोग से हुआ समझा जाएगा जबकि वह कार्य या लोप, जिसके परिणामस्वरूप दुर्घटना हुई, सार्वजनिक स्थान में हुआ था।¹

3.2 1988 के अधिनियम की धारा 147 की परीक्षा करने पर यह प्रकट होता है कि उपधारा (1) के खंड (ख) के उपखंड (2) में गंभीर प्रारूपण संबंधी तुटि है तथा स्पष्टता का ग्रभाव है और परिहर्य पुनरावृत्ति है। इस उपखंड की भाषा, जो संभवतः यह अपेक्षा करती है कि ऐसी बीमा पालिसी निकाली जाए, जो किन्हीं विनिर्दिष्ट व्यक्तियों का 'यात्रियों की मृत्यु या शारीरिक क्षति की बाबत' बीमा कर सकती है, स्पष्ट रूप से तुटिपूर्ण है क्योंकि यह बात स्पष्ट है कि कोई भी बीमा पालिसी मृत्यु या शारीरिक क्षति से बचाव के लिए बीमा नहीं कर सकती है। अतः, किसी का भी इस बात पर ध्यान जाएगा कि इस उपखंड का आशय यह है कि किन्हीं विनिर्दिष्ट व्यक्तियों का बीमा 'किसी ऐसे दायित्व की बाबत, जो किसी यात्री की मृत्यु या शारीरिक क्षति के संबंध में उनके द्वारा उपगत हो...' किया जाना चाहिए और इस उपखंड को तदनुसार पुनः रचा जाना चाहिए।²

3.3 उक्त उपखंड की भाषा में उपर्युक्त तुटि के अतिरिक्त, खंड (ख) के उपखंड (1) और उपखंड (2) उनके विस्तार क्षेत्र के मामले में एक दूसरे पर हावी हैं। अलग से पढ़ने पर उपखंड (1) बहुत व्यापक है। यह यान के स्वामी या प्रयोगकर्ता से ऐसी बीमा पालिसी लेने की अपेक्षा करता है जो ऐसे दायित्व से सुरक्षा प्रदान करे जिसे वह 'किसी भी व्यक्ति की मृत्यु या शारीरिक दायित्व की बाबत अथवा पर-व्यक्ति की किसी संपत्ति को नुकसान की बाबत, जो उनके वाहन के किसी सार्वजनिक स्थान में प्रयोग के कारण या उनके संबंध में हो', उपगत करे। या खंड, प्रथमदृष्ट्या, सभी मोटर यानों को, जिनके अंतर्गत सार्वजनिक सेवा यान भी हैं, लागू होता है। इसी प्रकार, 'किसी भी व्यक्ति' अधिव्यक्ति का प्रयोग और किसी 'पर-व्यक्ति' के प्रति निर्देश (जिसके अंतर्गत स्पष्ट रूप से बीमाकर्ता और बीमाकृत के अतिरिक्त सभी व्यक्ति आ जाते हैं इस अपेक्षा को सर्वव्यापक बना देता है। अतः, उपखंड (1) इतना व्यापक है कि वह किसी भी मोटर यान के स्वामी या प्रयोगकर्ता से, जिसके अंतर्गत 'सार्वजनिक सेवा यान' भी है, ऐसी बीमा पालिसी लेने की अपेक्षा करता है जो किसी व्यक्ति की मृत्यु या शारीरिक क्षति या किसी व्यक्ति की संपत्ति को नुकसान, जिसके अंतर्गत ऐसे यान में सवार यात्री भी है, की जोखिम से सुरक्षा प्रदान करे। क्योंकि उपखंड (1) की भाषा इतनी व्यापक है कि उपखंड (2) के अंतर्गत आगे बाले मामले भी उनके अंतर्गत सम्मिलित हो जाते हैं, अतः, इस दृष्टि से उपखंड (2) निर्धक ग्रन्तीत होता है।

3.4 तथापि, उपखंड (2) का लोप करने की सिफारिश करने से पूर्व हमें इस प्रश्न की जांच कर लेनी चाहिए कि क्या विधान-मंडल ने अनजाने में ही उपर्युक्त खंडों की रचना की है या दोनों खंडों का निर्वचन इस प्रकार से किया जा सकता है कि वे अर्थपूर्ण हो जाएं। इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए 1939 के अधिनियम की धारा 95 के विधायी इतिहास के अध्ययन की आवश्यकता है, जो धारा वर्तमान धारा 147 की तत्स्थानी है। धारा 95 (1) (ख), जिस मूल रूप में 1939 के अधिनियम में अतःस्थापित की गई थी निम्नलिखित रूप में है:—

"(1) इस अध्याय की अपेक्षाओं का अनुपालन करने के लिए बीमा पालिसी ऐसी होनी चाहिए, जो—

(क) * * * * *

(ख) पालिसी में विनिर्दिष्ट व्यक्ति या वर्ग के व्यक्तियों का उपधारा (2) में विनिर्दिष्ट विस्तार तक निम्नलिखित के लिए बीमा करती है, अर्थात्:—

(1) उस यान का किसी सार्वजनिक स्थान में उपयोग करने से किसी व्यक्ति की मृत्यु या शारीरिक क्षति होने अथवा किसी पर-व्यक्ति की किसी संपत्ति को नुकसान पहुंचाने की बाबत उनके द्वारा उपगत दायित्व:—

परन्तु कोई पालिसी—

(i) उस पालिसी द्वारा बीमाकृत किसी व्यक्ति के कर्मचारी की उसके नियोजन से और उसके दौरान हुई मृत्यु के संबंध में अथवा ऐसे कर्मचारी की उसके नियोजन से और उसके दौरान हुई शारीरिक क्षति के संबंध में, ऐसे दायित्व को पूरा करने

के लिए अपेक्षित नहीं होगी, जो किसी ऐसे कर्मचारी की मृत्यु या उसकी शारीरिक क्षति की बाबत कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 (1923 का 8) के अधीन होने वाले दायित्व से भिन्न है जो—

(क) यान चलाने में नियोजित है, या

(ख) सार्वजनिक सेवा यान की दशा में, उस यान के कंडक्टर के रूप में अथवा उस यान पर टिकटों की जांच करने में नियोजित है, या

(ग) माल वाहन की दशा में, उस यान में वहन किया जा रहा है, या

(ii) सिवाय वहां जहां वाहन ऐसा वाहन है जिसमें यात्रियों का वहन भाड़े या पारिश्चिक पर अथवा किसी नियोजन संविदा के अनुसरण में या उसके कारण किया जाता है, उस घटना के, जिससे दावा उद्भूत होता है, घटने के समय उस वाहन में या उस पर वहन किए जा रहे या उसमें प्रवेश कर रहे या चढ़ रहे या उससे उतर रहे व्यक्तियों की मृत्यु या शारीरिक क्षति होने की बाबत दायित्व, या

(iii) किसी संविदात्मक दायित्व को पूरा करने के लिए अपेक्षित नहीं होगी।"

परन्तु की परीक्षा करने पर यह प्रकट होता है कि इसमें तीन अपवाद थे। इन अपवादों में से एक सार्वजनिक सेवा यानों की बाबत है और उनके लिए यह आवश्यक नहीं है कि वे 'यात्रियों की मृत्यु या क्षति' के बारे में तब के सिवाय बीमा पालिसी लेने की बाबत अथवा पर-व्यक्ति की किसी संपत्ति को नुकसान की बाबत, जो उनके वाहन के किसी सार्वजनिक स्थान में प्रयोग के कारण या उनके संबंध में हो', उपगत करे। या खंड, प्रथमदृष्ट्या, सभी मोटर यानों को, जिनके अंतर्गत सार्वजनिक सेवा यान भी हैं, लागू होती है सिवाय उन यानों के जो धारा 95 की उपधारा (1) के परन्तु के अंतर्गत सम्मिलित किए गए हैं और सभी व्यक्तियों को क्षति पहुंचाने के दायित्व की बाबत बीमा पालिसी लेने की अपेक्षा, सार्वजनिक सेवा यानों की दशा में भी, अनिवार्य या आज्ञापक थी। यह अर्थ 1939 के अधिनियम की धारा 95(1) के खंड (ख) की भाषा से, और जैसाकि पहले बताया गया है, 1988 के अधिनियम की धारा 147(1) के खंड (ख) के उपखंड (1) की भाषा से भी स्पष्ट रूप से निकलता है।

3.5 1939 के अधिनियम की धारा 95(1) में 1969 के अधिनियम सं० 56 द्वारा संशोधन किया गया था। खंड (ख) के स्थान पर एक नया खंड रखा गया था जिसमें उपखंड (i) और (ii) उसी रूप में थे जिस रूप में 1988 के अधिनियम की धारा 147(1) के खंड (ख) के उपखंड (1) और (2) हैं जिन्हें हम पहले उद्धृत कर चुके हैं। परन्तु के प्रारंभिक शब्दों में मामूली सा संशोधन किया गया था (जो हमारे वर्तमान प्रयोजनों के लिए सुरक्षित नहीं है), परन्तु के खंड (2) का लोप कर दिया गया था और खंड (3) को खंड (2) के रूप में संखारित किया गया था। इस संशोधन के उद्देश्यों और कारणों का कथन निम्नलिखित रूप में था।

"इस संशोधन से यह अपेक्षित है कि अध्याय 8 के अधीन मोटरयान की बीमा पालिसी निम्नलिखित अतिरिक्त विषयों की बाबत होगी, अर्थात्:—

(1) किसी पर-व्यक्ति की संपत्ति की नुकसानी;

(2) किसी सार्वजनिक सेवा यान की किसी सवारी की मृत्यु या शारीरिक क्षति, भले ही वाहन का स्वामी या प्रयोगकर्ता दुर्घटना के लिए उत्तरदायी नहीं हो, परन्तु प्रह तब जब सवारी की ओर से कोई उपेक्षा नहीं हो।"

यद्यपि, संशोधन द्वारा यह बात स्पष्ट कर दी गई थी कि बीमा पालिसी निम्नलिखित को सम्मिलित करेगी, अर्थात्:—

(क) यान के कारण तृतीय पक्षकार की मृत्यु, शारीरिक क्षति या संपत्ति के नुकसान की बाबत बीमाकृत का दायित्व; और

(घ) सार्वजनिक सेवा यान की दशा में ऐसे यात्रियों/सवारियों की क्षतिपूर्ति जिनकी मृत्यु हो जाए या जिन्हें शारीरिक क्षति हुई हो और जो ऐसे यान में किराया/मूल्य देकर यात्रा कर रहे हों, किन्तु पूर्वतर एक खंड के स्थान पर दो उपखंड रखने से कुछ भ्रम पैदा हो गया था ।

3.6 उच्चतम न्यायालय को मोटरयान अधिनियम, 1939 की धारा 95 के संशोधित उपवंधों का निर्वचन करने और धारा 95(1)(घ) के उपखंड (1) और (2) के विस्तार क्षेत्र के अंतर की परीक्षा करने का अवसर सीनू बी० मेहता बनाम बासकृष्ण⁵ के मामले में मिला था । इस निर्णय से उच्च न्यायालय⁶ द्वारा प्रतिपादित इस सिद्धान्त को अतिथित कर दिया गया था कि बीमा कंपनी किसी मोटरयान दुर्घटना में मृत या आहत व्यक्ति की क्षतिपूर्ति करने के दायित्वाधीन होगी जाहे यान के चालक की कोई त्रुटि या उपेक्षा हो या नहीं हो । उच्चतम न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया था ।

‘अधिनियम की धारा 95(1)(घ) (1) के अधीन यह अपेक्षित है कि बीमा पालिसी ऐसी पालिसी होनी चाहिए जो व्यक्ति का ऐसे दायित्व की बाबत बीमा करती है जो किसी सार्वजनिक स्थान में किसी वाहन से या जिसका प्रयोग करने से किसी व्यक्ति की मृत्यु या शारीरिक क्षति अथवा किसी व्यक्ति को कोई नुकसान अथवा किसी पर-व्यक्ति की सम्पत्ति के नुकसान के कारण उपगत हो । ध्यान रहे कि बीमा पालिसी का उद्देश्य व्यक्ति के हारा उपगत व्यक्ति को पूर्ति करना है । बीमा पालिसी किसी व्यक्ति के ऐसे दायित्व की बाबत सुरक्षा के लिए है जो मृत्यु या शारीरिक क्षति के सम्बन्ध में उपगत हो । वह दुर्घटना जिसका दायित्व बीमाकृत स्वामी या व्यक्ति पर मृत्यु या शारीरिक क्षति के सम्बन्ध में उपगत होने से बीमा कंपनी तक है, वह दायित्व बीमा द्वारा सुरक्षित है । अतः, यह स्पष्ट है कि, यदि स्वामी ने किसी व्यक्ति की मृत्यु या शारीरिक क्षति के सम्बन्ध में कोई दायित्व उपगत नहीं किया है तो उसका कोई दायित्व नहीं है और ऐसे दायित्व को बीमा से सुरक्षा प्रदान करने का कोई आशय नहीं है । जिस दायित्व की परिकल्पना की गई है वह उपेक्षा-विधि के अधीन और प्रतिनिधिक दायित्व के सिद्धान्त से उत्पन्न होता है । जिस रूप में उपवन्ध विद्यमान हैं वे स्वामी या बीमा कंपनी को यान के उपयोग से किसी पर-व्यक्ति को हुई शारीरिक क्षति के लिए तब तक दायी नहीं बनाते जब तक उसका दायित्व सिद्ध नहीं हो । यह बात ध्यान देने योग्य है कि अधिनियम की धारा 95(1)(घ) के उपखंड (2) के अधीन बीमा पालिसी द्वारा किसी व्यक्ति का बीमा सार्वजनिक सेवा यान के किसी यात्री की किसी सार्वजनिक स्थान में यान से या उसके प्रयोग से होने वाली मृत्यु या शारीरिक क्षति की बाबत किया जाना चाहिए । अधिनियम की धारा 95(1)(घ) के खंड (2) के अधीन, व्यक्ति का दायित्व तब उत्पन्न होता है जब किसी सार्वजनिक स्थान में यान से या उसके प्रयोग से किसी यात्री को कोई शारीरिक क्षति पहुंचती है । जहां तक यात्री को हुई शारीरिक क्षति का सम्बन्ध है, यह आवश्यक नहीं है कि वह व्यक्ति के या उसके द्वारा उपगत किसी कार्य या दायित्व का परिणाम हो । यह ध्यान देने योग्य है कि धारा 95 के उपवन्ध इंगलिश रोड ट्रैफिक ऐक्ट, 1930 की धारा 36(1) के समान है जिसका सुसंगत अंश यह अपेक्षा करता है कि बीमा पालिसी ऐसी होनी चाहिए जो किसी व्यक्ति की बाबत करती है जो उसे यान से या सड़क पर उसके प्रयोग से किसी व्यक्ति की मृत्यु या शारीरिक क्षति की बाबत उपगत हो । “दायित्व” पद, अर्थात्, व्यक्ति द्वारा उपगत दायित्व, का अर्थ है यान के प्रयोग से उत्पन्न होने वाले सभी दायित्व । इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि यह आवश्यक है कि व्यक्ति किसी दायित्व के अधीन हो और ऐसे ही दायित्व को ही बीमा पालिसी सुरक्षा प्रदान करती है ।

उपरोक्त निर्णय से यह स्पष्ट है कि अधिनियम के अधीन जिस बीमा पालिसी की गई है उसका प्रयोजन केवल बीमाकृत व्यक्ति को ऐसे दायित्व से सुरक्षा प्रदान करता है जो उसने विधि में पर-व्यक्तियों के पक्ष में उपगत किया हो, और जहां बीमाकृत ने ऐसा कोई दायित्व उपगत नहीं किया हो वहाँ बीमाकृत पर भी ऐसा दायित्व थोपा नहीं जा सकता है । तथापि ऐसा प्रतीत होता है कि उच्चतम न्यायालय ने उपखंड (1) और (2) की भाषा में अन्तर को महत्व दिया है और 1939 के अधिनियम (1969 के अधिनियम 56 द्वारा यथा संशोधित) की धारा 95(1)(घ) के उपखंड (2) का यह अर्थ लगाया है कि किसी सार्वजनिक सेवा यान के स्वामी द्वारा ली गई बीमा पालिसी में से यान के किसी यात्री को, किसी सार्वजनिक स्थान में यान से

या उसके प्रयोग में हुई मृत्यु या शारीरिक क्षति के लिये, प्रतिकर दिया जाना चाहिए जाहे स्वामी, अभिकर्ता वा ड्राइवर की ओर से कोई त्रुटि हो या नहीं हो ।

3.7 जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है,⁷ एक मत यह हो सकता है कि उपखंड (2) के प्रारम्भिक शब्दों में सर्विधार्थकता है और प्रारूपण की भूल है क्योंकि मृत्यु या शारीरिक क्षति की बाबत कोई बीमा नहीं हो सकता⁸ और दोनों उपखंडों की भाषा में अंतर में ऐसा कुछ नहीं है जिसका यह अर्थ लगाया जा सके कि उपखंड (2) यान का स्वामी या प्रयोगकर्ता अपनी कोई त्रुटि नहीं होने पर भी प्रतिकर देने के दायित्वाधीन है । इसका मतलब तो यह होगा कि बीमाकृतों की क्षतिपूर्ति को पालिसी उसके द्वारा उपगत दायित्व के सम्बन्ध में उसका बीमा करने मात्र से अधिक प्रदान करती है । तथापि, क्योंकि उच्चतम न्यायालय ने भी न बीमा द्वारा उपखंड (1) और (2) का अब वह अर्थ समझा जाना चाहिए जो उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट किया है और इन दोनों उपखंडों में, जो प्रत्यक्ष अतिव्याप्ति है, जिसका पहले उल्लेख किया गया है⁹ समाप्त हो जाता है ।

3.8 यद्यपि, धारा 147(1) के खंड (घ) के उपखंड (1) और (2) का मेलमिलाप करना सम्भव है उनका वर्तमान रूप में बने रहना निम्नलिखित कारणों से उचित नहीं है । पहली बात तो यह है कि इससे इस तर्क की गुजाइंग बनी रह सकती है कि उपखंड (2), जिसका सम्बन्ध सार्वजनिक सेवा यानों से है, इतना व्यापक है कि उसमें ऐसे यानों के स्वामियों द्वारा लिये जाने के लिये आवश्यक बीमा लाभ सम्मिलित है । दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि ऐसे यान कियाये पर उनके द्वारा बहन किये जाने वाले यात्रियों की मृत्यु या क्षति की बाबत ही बीमा लाभ देने के दायित्व के अधीन है न कि पर-व्यक्तियों और पर-पक्षकारों के प्रति व्यापक दायित्व के लिये, जिसकी चर्चा उपखंड (1) में है । इसी बात यह कि जैसा पहले उल्लेख किया जा चुका है, उपखंड (2) को जोड़ने का प्रयोजन त्रुटि विहीनता: दायित्व अधिरोपित करना था क्योंकि, किसी विनिर्दिष्ट उपवन्ध के बिना, बीमा केवल उन मामलों में प्रभावशील हो सकती है जहां यान के स्वामी की ओर से कोई त्रुटि हो, जैसा कि उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट किया है । यह स्पष्ट है कि जहां दुर्घटना करने वाले यान के स्वामी या उसके अभिकर्ता या सेवक की ओर से कोई त्रुटि होने का सबूत नहीं है वहां भी किसी व्यक्ति की मृत्यु या स्थायी निःशक्तता की बाबत बीमा लाभ उपलब्ध होना चाहिए क्योंकि अनुभव से यह ज्ञात होता है कि यानों का बेनामी स्वामित्व और बीमा पालिसीयों में प्रयुक्त भाषा का गलत लाभ देकर दुर्घटना-ग्रस्त व्यक्ति को प्राप्त होने वाली राहतों को नकारा जा सकता है, सिवाय तब जब वह त्रुटि योगदायी उपेक्षा और तत्समान प्रश्नों के होते हुए भी, सीधा बीमा कम्पनी का प्रश्नवल ले सकता है । इस कठिनाई को दूर करने के लिए 1939 के अधिनियम का संशोधन किया गया था और मोटरयान दुर्घटनाओं से पर-व्यक्तियों की मृत्यु और स्थायी निःशक्तता के मामलों में सभी वाहनों के स्वामियों पर त्रुटिविहीनता दायित्व अधिरोपित करने के लिए धारा 92क जोड़ी गई थी क्योंकि धारा 92क त्रुटिविहीनता के मामलों में भी प्रभावित व्यक्तियों की क्षतिपूर्ति करने का स्वामियों पर दायित्व सूजित करती है । पूर्ववर्ती उपखंड (1) की भाषा वांछित प्रयोजन को प्राप्त करने में अपर्याप्त है और उपखंड (2) की भाषा बनाए रखना एक अनावश्यक बात हो जाती है । तीसरे यह कि, धारा 92क और धारा 95(1)(घ) (2) के उपवन्धों के बीच कुछ हव तक व्यर्थता है । पूर्वतर धारा केवल मृत्यु और स्थायी निःशक्तता के संबंध में त्रुटिविहीनता दायित्व सूजित करती है और ऐसे मामलों में देय प्रतिकर के रकम को परिसीमित करती है; पश्चातवर्ती धारा बीमा यात्रियों को किसी भी प्रकार की क्षति से संमुखरक्षा प्रदान करती है इसके अधीन देय प्रतिकर की सीमा अविनिर्दिष्ट है । अतः, असीमित है। इसके अतिरिक्त, 1939 के अधिनियम की धारा 95 (1) के परंतु के खंड (2) के लोप के कारण, सार्वजनिक सेवा यानों की ओर से त्रुटिविहीनता दायित्व का विस्तार अनुकंपार्ण यात्रियों की बाबत भी हो जाता है जिन्होंने यान में यात्रा के लिए कोई किराया नहीं दिया हो था देने से स्वयं को बचा लिया हो । संभवतः विद्यान-मंडल का यह आशय नहीं था कि सार्वजनिक सेवा यानों के यात्रियों के पक्ष में, अन्य यानों के यात्रियों से भिन्न, त्रुटिविहीनता दायित्व का सृजन हो । वास्तव में, ऐसा भेदभाव संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघनकारी भेदभाव है¹⁰। इन कारणों से, और विशेषकर 1939 के अधिनियम की धारा 92क की दृष्टि से यह स्पष्ट है कि धारा 147(1)(घ)

का उपखंड (2), जो पूर्वतर धारा 95(1)(ब) का तत्स्थानी है, अनावश्यक, व्यव्य और निरर्थक है। सङ्क दुर्घटनाओं के शिकार व्यक्तियों को प्राप्त होने वाली राहतों पर कोई भी प्रभाव डाले बिना, इसे हटाया जा सकता है। हम तदनुसार सिफारिश करते हैं।

3.9 हमारे विचार में उपखंड (1) का भी यह स्पष्ट करने के लिए संशोधन किया जाना चाहिए कि अधिनियम की धारा 140 के अधीन बीमा पालिसी के स्वामी या प्रयोगकर्ता का लूटिविहीनता दायित्व भी सम्मिलित है। तदनुसार, हम धारा 147(1) के विचारान खंड (ब) के स्थान पर निम्नलिखित खंड (ब) प्रतिस्थापित करने की सिफारिश करते हैं:-

“(ब) पालिसी में विनिर्दिष्ट व्यक्ति या वर्ग के व्यक्तियों का, उपधारा (2) में विनिर्दिष्ट विस्तार तक, यान का किसी सावर्जनिक स्थान में उपयोग करने से किसी व्यक्ति की मृत्यु या शारीरिक क्षति होने अथवा किसी पर-व्यक्ति की किसी संपत्ति को नुकसान पहुंचाने की बाबत उसके द्वारा उपगत कोई दायित्व (जिसके अन्तर्गत धारा 140 के अधीन दायित्व भी है)।”

3.10 धारा 147 के परन्तु से खंड (1) की भाषा भी बहुत संदिग्धार्थक है। स्पष्टरूप से उसका आशय यह है कि बीमाकृत कर्मचारियों की मृत्यु या व्यक्तिगत क्षति के कारण दायित्व की बाबत बीमा सुरक्षा आवश्यक नहीं है। वह स्पष्टतया इसलिए क्योंकि ऐसे दायित्व के बारे में कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 में सुरक्षा प्रदान की गई है और बीमा द्वारा उसे सुरक्षित करने की आवश्यकता नहीं है। किन्तु परन्तुक को पढ़ने से ऐसा आभास होता है कि मामले कर्मचारियों की क्षति की बाबत भी उक्त अधिनियम के अधीन दायित्व से विनिर्दिष्ट रूप से सुरक्षा के लिये बीमा लेना आवश्यक है। यदि यह मान भी लिया जाये तब भी परन्तुक की भाषा में संशोधन किया जा सकता है। दूसरी बात, यह स्पष्ट नहीं है कि बीमा की आवश्यकता केवल कर्मचारियों के मामलों तक सीमित है। ये कर्मचारी निम्नलिखित में से किसी विवरण के अन्तर्गत आते हैं—

- (क) सावर्जनिक सेवा यानों के कंडक्टर या टिकट परीक्षक;
- (ख) सभी मामलों में यानों के ड्राइवर; और
- (ग) कोई कर्मचारी जो माल वाहन का याती हो।

ड्राइवर, कंडक्टर या टिकट परीक्षक के अतिरिक्त, ऐसे और भी कर्मचारी हो सकते हैं जो अपने कर्मचारी के दौरान किसी प्राइवेट या सावर्जनिक सेवा यान में याता कर रहे हों, जिन्हें किसी दुर्घटना में हुई क्षति का दायित्व 1923 के अधिनियम से सुरक्षित हो सकता है। तीसरे, परन्तुक की भाषा बहुत भ्रमपूर्ण और पुनरावृत्तिपूर्ण है, उसमें “उसके नियोजन से और उसके दौरान हुई क्षति” शब्द और “कर्मचारी की मृत्यु या उसकी शारीरिक क्षति” शब्दों की पुनरावृत्ति हुई है। यदि केवल यह आशय है कि बीमा पालिसी का विस्तार, कर्मचारियों की दशा में, 1923 के अधिनियम में उपबंधित सुरक्षा की बाबत करना आवश्यक नहीं था तो इसे अत्यन्त साधारण शब्दों में कहा जा सकता था। परन्तुक का इस बाबत पुनः प्रारूपण करना होगा।

3.11 उपर्युक्त प्रारूपण संबंधी कमियों के अतिरिक्त, हमारी राय यह है कि धारा में किया गया प्रथम अपवाद सर्वथा अवांछित है और कुछ ऐसी विसंगतियों को जन्म देता है जो आशयित नहीं थीं। मोटर दुर्घटना में आहत या मारे गये व्यक्ति का दायित्व अधिनियम के अधीन गठित अभिकरणों द्वारा उन सिद्धान्तों पर अवधारित किया जाता है जो अपकृत्यकारी दायित्व के लिये नुकसानी का अवधारण करते हैं। इन सिद्धान्तों के अनुसार, नुकसानी का अवधारण प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के संदर्भ में, अनेक बातों को ध्यान में रख कर, जैसे दुर्घटनाग्रस्त की आयु, उसकी आमदनी, दुर्घटना के समय उसकी जो आयु थी वह कहां तक जा सकती थी, किस सीमा तक वह अपने संगे-संबंधियों को वित्तीय समर्थन दे रहा था, आदि किया जाता है। इन दिनों इन अभिकरणों द्वारा प्रतिकर की जो रकम दो जा रही है वह उदार, पर्याप्त और वर्तमान समय की आर्थिक दशाओं के अनुरूप है। दूसरी ओर, कर्मकार प्रतिकर अधिनियम

(1923 का 8) इस शताब्दी के आरंभ में बनाया गया कानून है और उसकी धारा 4 में उपबंधित प्रतिकर की दरें अपर्याप्त हैं और वर्तमान समय की वास्तविकता और मूल्यों से मेल नहीं खाती हैं।¹⁰ यदि हम परंतुक की परीक्षा इस महत्वपूर्ण अन्तर को ध्यान में रखते हुए करें तो यह स्पष्ट होगा कि याता से संबंधित दुर्घटना में आहत होने वाले पर-व्यक्तियों के प्रति जहां मोटरयान के स्वामी और उसके बीमाकर्ता दुर्घटनाग्रस्त को हुए पूर्ण नुकसान या क्षति की सीमा तक उत्तरदायी होंगे वहीं यह दायित्व, यदि दुर्घटनाग्रस्त व्यक्ति स्वामी का कर्मचारी है तो, कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 में विनिर्दिष्ट सीमा तक सीमित होगा।¹¹ विधान-मंडल का आशय कभी भी इस प्रकार की विषमता पैदा करना नहीं होगा। यह तो संभवतः एसा भेद-भाव है जो संविधान का उल्लंघन करता है। तथापि, यह कहना पर्याप्त है कि कर्मकार की दशा में अनिवार्य बीमा विस्तार अधिनियम, 1923 के अधीन दायित्व तक करने की परिसीमा और इस अधिनियम का केवल परंतुक में वर्णित कर्मचारियों के प्रवर्गों पर लागू किया जाना, न्यायौचित्य नहीं कहा जा सकता।

3.12 दूसरी बात यह है कि इस परन्तुक का एक और परिणाम निकलता है जो अनशयित है। इसमें यह विविक्षित है कि मोटर दुर्घटना में आहत कर्मचारी कुछ दशाओं में 1923 के अधिनियम के अधीन अनुतोष का दावा करने का हकदार हो सकता है। यदि वह ऐसा करता है तो नियोजक को इस दायित्व का वहन करने के लिये बीमा पालिसी लेकर, जो ऐसे दायित्व से सुरक्षा के लिये इस धारा के अधीन अनिवार्य है, अपना बचाव करेगा। किन्तु ऐसे कर्मचारी को, यदि वह चाहे तो, इस अधिनियम के अधीन प्रतिकर का दावा करने का बैकल्पिक उपचार उपलब्ध है।¹²

नियोजक का दायित्व इस अधिनियम के अधीन उत्पन्न होगा न कि 1923 के अधिनियम के अधीन अतः संभवतः परन्तुक के अधीन अनिवार्य बीमा सुरक्षा इस मामले में लागू नहीं होगी। अतः कर्मचारी को न केवल यह निश्चित करना होगा कि दोनों उपचारों में से किससे उसे अधिक लाभ प्राप्त होगा, बल्कि यह निश्चय भी करना होगा कि इस अधिनियम के अधीन उपचार जो कि अधिक रकम का है, प्राप्त करना उसके लिये लाभदायक है कि नहीं क्योंकि दूसरी और उसे अन्यथा उपलब्ध बीमा सुरक्षा खोने की जोखिम है। एक अनपढ़ या कम पढ़े लिये कर्मकार के लिये ऐसा निर्णय लेना आसान नहीं है, और ऐसे कठिन निर्णय लेने से न्याय का उद्देश्य पूरा नहीं होगा।

3.13 तीसरी बात यह है कि कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 (1948 का 34) के उपबंधों के प्रभाव को परन्तुक ध्यान में नहीं रखता है; जबकि यह उपबंध इन मामलों में से कुछ में आकर्षित होता है। परन्तुक में उन मामलों में आवश्यक बीमा सुरक्षा के विस्तार को परिभाषित नहीं किया गया है। यह तकनीकी है कि यह स्पष्ट करने के लिये कि उन मामलों में बीमा सुरक्षा आवश्यक नहीं होगी जिनमें 1948 के अधिनियम के अधीन बीमा सुरक्षा प्राप्त है, परन्तुक में संशोधन किया जाना चाहिये।

3.14 इस स्थिति में दो मार्ग अपनाता सम्भव है। एक मार्ग तो यह हो सकता है कि कर्मचारियों की बाबत किसी भी दायित्व के सम्बन्ध में अनिवार्य बीमा सुरक्षा को अपवर्जित कर दिया जाये जिससे कि कर्मचारी अन्य कानूनों के अन्तर्गत उन्हें अन्य फोरमों में नियोजक के विश्वास अपवर्जित कर दिया जाए। और नियोजक स्वामी भी कर्मचारी की मृत्यु या क्षति के सम्बन्ध में ऐसी बीमा सुरक्षा प्राप्त करने का निर्णय लेने के लिये, जो वह उचित समझे, स्वतन्त्र हो। दूसरा विकल्प यह होगा कि कर्मचारियों के दायित्व के सम्बन्ध में अनिवार्य बीमा लेने की आवश्यकता के सिवाय कुछ प्रवर्गों की बाबत अपवर्जन को समाप्त कर दिया जाए और सभी कर्मचारियों को उसी स्थिति में रख दिया जाये जिसमें ऐसे अन्य व्यक्ति आते हैं जो किसी मोटर यान दुर्घटना में मर जाते हैं या आहत हो जाते हैं। हमारी राय में दूसरा मार्ग बेतहर है क्योंकि मोटर दुर्घटना में मृत्यु या क्षति के लिये प्रतिकर के मामलों में कर्मचारियों और अन्य व्यक्तियों के बीच अन्तर रखने का कोई न्यायौचित्य नहीं है।

3.15 हमारी यह राय है कि उक्त कारणों से, परन्तुक के उपरान्त अंश की कोई उपयोगिता नहीं रही है और तर्कपूर्ण आधार नहीं रहा है तथा उसका लोप कर दिया जाना चाहिये । अतः यह सिफारिश की जाती है कि परन्तुक में संशोधन किया जाना चाहिये जो निम्नलिखित रूप में हो ।

“परन्तु इस उपधारा में निर्दिष्ट पालिसी किसी संविदात्मक दायित्व को पूरा करने के लिये अपेक्षित नहीं होगी ।”

3. 16 जैसी कि ऊपर चर्चा की गई है, कानून में मूलतः अनिवार्य लाभ के विस्तार के बारे में अनेक सीमाओं का उपबन्ध किया गया था। भाग्यवश वे सभी सीमायें हटा दी गई हैं और अब यह उपबन्ध किया गया सीमाओं का उपबन्ध किया गया था। भाग्यवश वे सभी सीमायें हटा दी गई हैं और अब यह उपबन्ध किया गया है कि किसी व्यक्ति की मृत्यु या क्षति की दशा में वीमा से सम्पूर्ण वास्तविक दायित्व पूरा होना चाहिये (धारा 147) (2) (क) (1)। तथापि, सम्पत्ति के नुकसान या नष्ट होने के सम्बन्ध में अनिवार्य वीमा लाभ (धारा 147) (2) (ख) के अधीन 6000 रुपये तक सीमित है।

“147. (2) उपधारा (1) के परंतुक के अधीन रहते हुए, उपधारा (1) में निर्दिष्ट बीमा पालिसी के अंतर्गत किसी दुर्घटना की वाबत उपगत कोई दायित्व सार्वजनिक स्थान पर यान से या उसका प्रयोग करने से किसी व्यक्ति की मृत्यु या शारीरिक असुविधा परन्यक्ति की किसी संभिति के नुकसान की वाबत उपगत दायित्व की संतुर्ज रकम को पूरा करने तक होगा”।

पाद टिप्पणी—अध्याय 3

1. देखिए, एम.एन. श्रीमित्रासन, "बैनरीकॉर्पोरेशन अंडर द स्यू मोटर इंश्योरेंस लॉ" 1992, 2, एम.एल.जे. (जनेल), 203
 2. जैसा कि अगे देखा जा सकेगा, संभवतः, ऐसी बात नहीं है। इसके अतिरिक्त, भाषा की पुनः रचना करने से, जैसाकि सुझाव है, दोनों खंडों में पुनरावृत्ति होगी।
 3. इस अपवाद का 1988 के अधिनियम में से लोप कर दिया गया है।
 4. संशोधनकारी अधिनियम के खंड 54(का)(1) द्वारा।
 5. ए. आई.आर. 1977 उच्च. न्या. 1248।
 6. हज जकारिया बनाम नोशीर कामा ए.आई.आर. 1976 ए.पी. (171)।
 7. पैरा 3.2
 8. पैरा 3.3
 9. 1984 में वर्तमान रूप में पुनः अधिनियमित परन्तुक में कर्मकार की मजदूरी की प्रतिशतता को ध्यान में रखा गया और कर्मकार की आयु के आधार पर प्रतिकर के रूप में उस मजदूरी प्रतिशत के एक नियत भिन्नांश का उपबन्ध दिया गया है। कर्मकार की मजदूरी को, इस प्रयोजन के लिये, अधिकतम 1000 रुपये प्रति मास नियत किया गया है।
 10. वास्तव में, इस उपबन्ध के बिना भी, यह तर्क भली-भांति दिया जा सकता है तथा स्वामी से, नियोजक के रूप में, 1923 के अधिनियम में विनिष्ट रकम से अधिक प्रतिकर देने की अपेक्षा नहीं की जा सकती है। वीमार्कर्ता का दायित्व, जो क्षतिपूरिकर्ता का दायित्व है, उच्चतर नहीं हो सकता।
 11. स्पष्ट है कि वह दोनों अनुतोषों की मांग नहीं कर सकता। यह बात मोटरवाहन अधिनियम, 1988 की धारा 167 में स्पष्ट कर दी गई है।
 12. ऐसे मामलों में, 1923 का अधिनियम लागू नहीं होगा। 1948 के अधिनियम की धारा 53 देखिए।

अध्याय 4

बीमाकर्ता के लिये प्रतिरक्षा के आधार

4.2 धारा 96(2) में यह उपबंध भी किया गया है कि वीमाकर्ता प्रतिकर की कार्यवाही में निम्नलिखित आधारों पर अपनी प्रतिरक्षा कर सकता था, अर्थात् :—

- (क) पालिसी को उस दुर्घटना से पहले रह कर दिया गया था जिससे दायित्व उत्पन्न हुआ था;
 (ख) धारा 96(2)(ख) में वर्णित पालिसी की तीनों शर्तों में से किसी एक का उल्लंघन हुआ था;
 और

(ग) पालिसी स्वयं ही अवैध थी क्योंकि उसमें तात्त्विक तथ्यों को छियापा गया था या उनका मिथ्या-
 व्यपदेशन किया गया था ।

इन तीनों ही स्थितियों में वीमाकर्ता की क्षतिपूर्ति करने का या किसी पर-व्यक्ति द्वारा वीमाकर्ता के विरुद्ध प्राप्त किये गये निर्णय की सन्तुष्टि का दायित्व नहीं था; परन्तु, जहां धारा 96(2)(ख) में उल्लिखित तीनों शर्तों से भिन्न किन्हीं शर्तों का उल्लंघन हुआ हो वहां वीमाकर्ता पर-व्यक्ति द्वारा प्राप्त किये गये निर्णय को सन्तुष्ट करने को बाध्य था किन्तु वीमा से दी गई रकम वसूल कर सकता था। दूसरे शब्दों में, ऐसी निर्बंधनकारी शर्तें वीमाकृत के विरुद्ध प्रभावी थीं। किन्तु पर-व्यक्ति पर बाध्यकर नहीं थीं। धारा 96(3) का यहीं प्रभाव था जो निम्नलिखित रूप में हैं:—

“जहां उस व्यक्ति को, जिसने पालिसी कराई है, धारा 95 की उपधारा (4) के अधीन बीमा प्रमाण-पत्र दे दिया गया हो वहां पालिसी का उतना भाग, जितना उस पालिसी द्वारा बीमाकृत व्यक्ति का बीमा उपधारा (2) के खंड (ख) में दी गई शर्तों से भिन्न किन्हीं शर्तों के निर्देश से निर्बन्धित करने के लिये तात्पर्यित है, धारा 95 की उपधारा (1) के खंड (ख) के अधीन पालिसी के द्वारा पुरा करने के लिये अपेक्षित दायित्वों के सम्बन्ध में प्रभावहीन होगा :

परन्तु वीमाकर्ता द्वारा किसी व्यक्ति के किसी दायित्व के निर्वहन में या मदे दी गई कोई धनराशि, जो केवल इस उपधारा के आधार पर पालिसी के अंतर्गत है, वीमाकर्ता द्वारा उस व्यक्ति से वसूलीय होगी ।

4.3 1988 के अधिनियम की धारा 149 वर्ष 1939 के अधिनियम की धारा 96 का स्थान ले लेती है, 1988 के अधिनियम की धारा 149 (1), (3), (4), (5), (6), और (7) 1939 के अधिनियम की धारा 96(1), (2क), (4), (5) और (6) को मामूली परिवर्तनों के साथ, जो हमारे वर्तमान प्रयोजन के लिये महत्वपूर्ण नहीं हैं, पुनः अधिनियमित करती हैं, तथापि धारा 1/4/9

वर्ष 1939 के अधिनियम की धारा 96(2) को एक महत्वपूर्ण अन्तर के साथ पुनः अधिनियमित करती है, अर्थात् उसके खंड (क) का लोप करके, इस प्रकार धारा 149(2) में केवल दो खंड (क), (ख) हैं जो 1939 के अधिनियम की धारा 96(2) के खंड (ख) और (ग) के तत्त्वानी हैं। दूसरे शब्दों में, धारा 149 का अधिनियमन करके नवे अधिनियम ने धारा 96 के उपबन्धों से, इस बात के सिवाय कि धारा 96(2) का लोप किया गया है, कोई अन्य महत्वपूर्ण अन्तर नहीं किया है। तथापि, धारा 149(च) वर्ष 1939 के अधिनियम की धारा 96 (3) की भाषा की पुनरावृत्ति करती है सिवाय इस बात के कि “धारा 95 की उपधारा (4)” और “धारा 95 की उपधारा (1) के खंड (ख)” के स्थान पर, पुनराने अधिनियम की धारा 95 को धारा 147 के रूप में, कुछ परिवर्तनों सहित पुनः अधिनियमित करने के परिणामों सहित रख दिया गया है किन्तु इसमें “उपधारा (2) के खंड (ख) से भिन्न शर्तें” के प्रति निर्देश को विना इस बात को ध्यान में रखते हुये, सम्मिलित कर लिया गया है कि उक्त “खंड (ख)” नई धारा 149 (2) में “खंड (क)” बन गया था। यह एक स्पष्ट मूल है। अतः, हम सिफारिश करते हैं कि अधिनियम की धारा 149 (4) में “उपधारा (2) का खंड (क)” शब्दों के स्थान पर “उपधारा (2) का खंड (ख)” शब्द रखे जाने चाहिये।

શાદ ટિપ્પણ—અધ્યાત્મ્ય 4

1. इस संदर्भ में श्री एमोपनू श्रीनिवासन के लेख को (ए आई आर 1992 उच्च व्यायालय जनल-18) देखें जिसमें इस विधि स्पष्ट का उल्लेख किया गया है।

अध्याय 5

टक्कर मारकर भागने के मामले

5.1 प्रायः, ऐसे मामले देखने में आते हैं जिसमें दुर्घटना करने वाले वाहन किसी व्यक्ति को टक्कर मारकर भाग जाते हैं। ऐसे टक्कर मारकर भागने वाले मामलों के लिए धारा 140 और धारा 147 में जो उपचार दिए गए हैं वे प्रभावपूर्ण नहीं हैं। इस कठिनाई को दूर करने के लिए 1939 के अधिनियम में धारा 109क जोड़ी प्रतिकर दिया जा सकता था।¹ 1988 के अधिनियम की धारा 161 में, जो 1939 के अधिनियम की धारा

मृत्यु की दशा में	8500 रुपए
गम्भीर क्षति की दशा में	2000 रुपए

5.2 हमें यह प्रतीत होता है कि तदर्थ³ आधार पर दुर्घटनाग्रस्त व्यक्तियों को देय प्रतिकर की बावत धारा 140 और धारा 161 के अन्तर्गत आने वाली दोनों स्थितियों में सिद्धान्त रूप से शायद ही कोई अन्तर नहीं है। यह प्रतिकर दुर्घटनाग्रस्त व्यक्ति के प्रपराधी या बीमाकर्ता के विरुद्ध अनुतोष प्राप्त करने के अधिकार पर है। यह प्रतिकर दुर्घटनाग्रस्त व्यक्ति के प्रयोजनों के लिए कोई भिन्न वर्गीकरण करने कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालता। इस धारा और धारा 140 के प्रयोजनों के लिए कोई अन्तर नहीं है। अतः, हम यह सुझाव देते हैं कि धारा 161 की भाषा धारा 140 के समान होनी चाहिए और सिफारिश करते हैं कि धारा 161 की उपधारा (1) के खंड (क) और उपधारा (3) में समुचित संशोधन किया जाना चाहिए।⁴

पाठ टिरपण—अध्याय 5

1. यह बात विधि आयोग की 51वीं रिपोर्ट में की गई इस सिफारिश को आशक रूप से स्वाक्षर करती है कि ऐसे मामलों में प्रतिकर राज्य द्वारा दिया जाना चाहिए।
 2. 1988 के अधिनियम की धारा 142 और भारतीय दंड संहिता की धारा 326 में दी गई परिभाषा देखिए।
 3. यदि दुर्घटनाग्रस्त को सीधे ही अधिनियम प्राप्त हो जाता है तो ऐसे मामले में समयोजन किया जाएगा।
 4. प्रकाशित संशोधन के लिए अध्याय 2 का भाग 4 देखिए।

अध्याय ६

विधिक प्रतिनिधि

6.1 1988 के अधिनियम की धारा 166, जो 1939 के अधिनियम की धारा 110क की तत्स्थानी है, उपबन्ध करती है कि यदि मूल्य दुर्घटना के परिणामस्वरूप हो जाती है तो प्रतिकर के लिए आवेदन मृतक के सभी या किन्हीं विधिक प्रतिनिधियों द्वारा किया जा सकता है। अधिनियम में विधिक प्रतिनिधि शब्द की परिभाषा नहीं दी गई है। विधि आयोग की एक पूर्वतर रिपोर्ट में यह सुझाव दिया गया था कि धातक दुर्घटना अधिनियम, 1855 में दी गई इस पद की परिभाषा को, इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए, अप्रनाया जा सकता था।¹ उच्चतम न्यायालय ने कूर्ही मोहम्मद के मामले² में इस मत को स्वीकार नहीं किया था और यह सुझाव दिया गया था कि इंग्लैण्ड में पिर्यसन कमेटी³ द्वारा प्राप्तिपत्र और इस विषय पर इंग्लैण्ड के नए कानून में सम्मिलित की गई परिभाषा अधिक उचित होगी।⁴ यद्यपि, उच्चतम न्यायालय द्वारा की गई इस टिप्पणी के समय विधेयक संसद के विचारणाधीन था, संसद ने विधिक प्रतिनिधि की परिभाषा को 1988 के अधिनियम में सम्मिलित नहीं किया। इस लोप का उपचार किया जाना चाहिए। हम समझते हैं कि इन परिस्थितियों में “विधिक प्रतिनिधि” की परिभाषा को इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए सम्मिलित करना आवश्यक है। हम सुझाव देते हैं कि इसे अधिनियम की धारा 166 की उपधारा (1) के स्पष्टीकरण के रूप में जोड़ दिया जाए। विधिक प्रतिनिधि की परिभाषा किन शब्दों में की जानी चाहिए?

6.2 पिर्यसन कमीशन की सिफारिश⁵ पर इंग्लैंड में जोड़ी गई और विधि आयोग की 1973 की रिपोर्ट⁶ में दी गई परिभाषा निम्नलिखित रूप में है⁷

“(3) इस अधिनियम में, आश्रित से निम्नलिखित अभिप्रेत है :—

- (क) मृतक की पत्नी या पति अथवा पूर्व पत्नी या पति ;

(ख) कोई व्यक्ति जो ---

 - (1) मृतक की मृत्यु की तारीख से ठीक पहले उसी घर में मृतक के साथ रहता था ;
 - (2) उस तारीख के ठीक पहले कम से कम दो वर्षों से पहले उसी घर में मृतक के साथ रह रहा था ; और
 - (3) उस समस्त अवधि में मृतक के पति या पत्नी के रूप में रहता था या रहती थी ;

(ग) मृतक के माता पिता या अन्य पूर्व पुरुष ;

(घ) कोई व्यक्ति जिसे मृतक माता पिता के रूप में मानता था ;

(ङ) मृतक की कोई सन्तान या अन्य वंशज ;

(च) कोई व्यक्ति (जो मृतक की संतान नहीं है) जिसे, किसी ऐसे विवाह की दशा में जिसमें मृतक किसी समय एक पक्षकार था, मृतक उस विवाह के संबंध में, कुटुम्ब की एक संतान के रूप मानता था ;

(छ) कोई व्यक्ति, जो मृतक का भाई, बहिन, चाचा या चाची अथवा उनकी संतान है ।

(4) ऊपर उपधारा (3)(क) में मृतक की पूर्व पत्नी या पति के रूप में निर्दिष्ट व्यक्ति के अन्तर्गत ऐसे व्यक्ति के प्रति निर्देश भी हैं जिसका मृतक के साथ विवाह निरस्त या अवैध घोषित कर दिया गया है तथा ऐसा भी व्यक्ति है जिसका मृतक के साथ विवाह विधायित हो गया है।

(5) उपरोक्त उपधारा (3) के प्रयोजनों के लिए कोई संबंध निकालने के लिए :-

(क) विवाह संबंध के माध्यम से संबंध को समरकता के माध्यम से, और अर्धरक्त के संबंध को पूर्ण रक्त के संबंध के रूप में, तथा किसी व्यक्ति की सौतेली संतान को उसकी संतान माना जाएगा; और

(ख) किसी अर्धर्मज को उसकी माता और तथाकथित पिता की धर्मज संतान के रूप में माना जाएगा।

(6) इस अधिनियम में क्षति के प्रति किसी निर्देश के अन्तर्गत कोई बीमारी या किसी व्यक्ति की शारीरिक या मानसिक दशा में होना आता है।

यह एक पूर्ण और व्यापक परिभाषा है जो मृतक से संबंधित किसी भी व्यक्ति को प्रतिकर का दावा करने के लिए समर्थ बनाती है।

6.3 प्रश्न यह है क्या इस परिभाषा को 1988 के अधिनियम में शब्दशः रख दिया जाना चाहिए। इसमें कोई दो राय नहीं है कि 1988 के अधिनियम के प्रत्येक प्रतिकर के हकदार व्यक्तियों की सूची लगभग उसी रूप में तैयार की जानी चाहिए जिस रूप में वह घातक दुर्घटना अधिनियम के अन्तर्गत तैयार की गई है। दुर्भाग्यवश, भारत में घातक दुर्घटना अधिनियम, 1855 में बना था जिस समय घातक दुर्घटनाएं उतनी नहीं होती थीं जितनी कि आजकल, तेज चलने वाले वाहनों की संख्या में वृद्धि होने के पश्चात् हो गई है, किन्तु उसके बाद अधिनियम का पूर्ण निरीक्षण नहीं हुआ है। भारत के उच्चतम न्यायालय ने 1939 के अधिनियम की धारा 110क और 110ख का यह अर्थ लगाया है कि उसमें आश्रितों के बहुत व्यापक बर्ग को सम्मिलित किया गया है और उक्त न्यायालय इस प्रयोजन के लिए घातक दुर्घटना अधिनियम के अन्तर्गत की गई संकुचित परिभाषा को स्वीकार करने के लिए इच्छुक नहीं था⁸। विधि आयोग को घातक दुर्घटना अधिनियम, 1855 के उपबन्धों पर विचार करने का अवसर मिला था और उसने अपनी व्यापक सिफारिश⁹ भी भेजी थी। उस सिफारिश में उन संबंधियों को परिभाषित करने के प्रश्न पर लम्बी चर्चा की गई है जो किसी व्यक्ति की सदृश मृत्यु होने की दशा में प्रतिकर प्राप्त करने के हकदार होने चाहिए। उस रिपोर्ट में आयोग ने इंग्लैंड के घातक दुर्घटना अधिनियम, भारतीय कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923¹⁰ और भारतीय रेल अधिनियम, 1890¹¹ में दी गई परिभाषा का उल्लेख किया था और निम्नलिखित संबंधियों की¹² सूची की अंतिम रूप से सिफारिश की थी—

(क) पति पत्नी; (ख) संतान; (ग) पुत्रवधु; यदि विधवा हो; (घ) माता पिता; (ड.) भाई या बहन की संतान; (च) भाई की विवेचना; (छ) बहिन और बहिन की संतान; (ज) चाचा और चाचा की संतान; और चाची तथा चाची की संतान।

इस सूची में “संतान” शब्द का व्यापक अर्थ समझा जाना चाहिए जिससे उसके अन्तर्गत पुत्र, पुत्री, प्रपौत्र, प्रपौत्री, गोद ली गई संतान और वह व्यक्ति जिसका मृतक व्यक्ति के साथ माता-पिता जैसा संबंध हो” आ जाए और “माता-पिता” पद के अन्तर्गत “पिता, माता, दादा, दादी, सौतेला पिता, सौतेली माता, वह व्यक्ति जिसने संतान गोद ली है।¹³ और वह व्यक्ति जिसका मृतक के साथ माता-पिता जैसा संबंध हो” आ जाए। इंग्लिश अधिनियम की धारा 1 की उपधारा (5) और (6), जिन्हें 1982¹⁴ में प्रतिस्थापित किया गया था, के अनुरूप और इस आशय का एक और उपबन्ध भी कि “संबंधित के द्योतक इस अधिनियम के सभी शब्द गर्भ स्थित संतान को जो तत्पश्चात् जीवित पैदा होती है”¹⁵ शामिल करने की सिफारिश भी की गई थी। इस परिभाषा में इंग्लिश परिभाषा के उपबन्ध लगभग सम्मिलित हैं।

6.4 हाल ही में, जब रेल अधिनियम, 1989 को पुनः तैयार किया जा रहा था तब संयोग से, उन संबंधियों का उल्लेख करने के प्रयोजन के लिए, जो रेल दुर्घटना में किसी व्यक्ति की मृत्यु होने पर प्रतिकर का दावा कर रहे हैं, ‘आश्रित’ की परिभाषा दी थी जो निम्न प्रकार है:-

“आश्रित” से निम्नलिखित संबंधी अभिप्रेत है:-

(1) पति, पत्नी, पुत्र, पुत्री और यदि मृतक यात्री अविवाहित या अवयस्क है तो उसके माता-पिता;

(2) माता-पिता¹⁶ अवयस्क भाई, या अविवाहित बहन, विधवा बहन, विधवा पुत्र वधु और पूर्व वृक्ष पुत्र की अवयस्क संतान, यदि वह मृतक पर पूर्ण रूप से या अंशिक रूप से आश्रित है;

(3) पूर्व मृत पुत्री की अवयस्क संतान यदि वह मृत यात्री पर पूर्ण रूप से आश्रित है¹⁸;

(4) पितृ पक्ष के दादा-दादी यदि वह मृत यात्री पर पूर्ण रूप से आश्रित है।

6.5 इस प्रकार हमारे पास चुनने के लिए दो परिभाषाएं हैं।¹⁹ दोनों ही परिभाषाएं घातक दुर्घटना अधिनियम, 1855 में दी गई परिभाषा से अधिक व्यापक हैं, और उच्चतम न्यायालय द्वारा परिकल्पित सभी स्थितियों का उसके अन्तर्गत समाधान हो जाता है।²⁰ वास्तव में यह उपयुक्त और उचित होगा यदि तीनों कानूनों में, अर्थात्, घातक दुर्घटना अधिनियम, 1855, रेल अधिनियम, 1989 और भोटरयान अधिनियम, 1988 में “संबंधी” अथवा “आश्रित” की परिभाषाएं एक समान हों। अतः, यह सुझाव देना आसान होगा कि रेल अधिनियम, 1989 में दी गई परिभाषा को भोटरयान अधिनियम में ग्रहण कर लिया जाए और जब भी घातक दुर्घटना अधिनियम को नए सिरे से तैयार किया जाए, तब उसमें भी यही परिभाषा सम्मिलित कर ली जाए। परन्तु इस परिभाषा में कुछ कमियां हैं। प्रथम तो यह कि इसमें मृतक पर संबंधी के आश्रित होने पर अधिक बल दिया गया है और मृतक के साथ संबंधी की मात्रा पर कम। वास्तव में परिभाषा में इस प्रकार से बल देने की आवश्यकता नहीं है व्योंगि संबंधी द्वारा प्राप्त किया जाने वाला प्रतिकर मृत्यु के परिणामस्वरूप उसे होने वाली अस्ति के अनुपात में होगा और यदि संबंधी मृत्यु पर बिल्कुल आश्रित नहीं था तो उसे कोई अनुतोष नहीं मिलेगा।²¹ दूसरे रेल अधिनियम में दी गई परिभाषा में कुछ विभेदकारी खंड हैं जिन्हें न्यायालय में चुनौती दी जा सकती है, उदाहरण के लिए पूर्व मृत पुत्र की अवयस्क संतान प्रतिकर का दावा कर सकता है भले ही वह मृत्यु पर अंशिक रूप से आश्रित न हो जबकि पूर्व मृत पुत्री की अवयस्क संतान तब तक दावा नहीं कर सकती जब तक वह पूर्ण रूप से आश्रित न हो। पितृ पक्ष के दादा-दादी को परिभाषा से सम्मिलित किया गया है जबकि मृत्यु पक्ष के नाना-नानी को छोड़ दिया गया है। तीसरी बात यह है कि परिभाषा में यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि “संतान और माता पिता” पदों को व्यापक और संश्लिष्ट रीति से समझा जाना चाहिए। इन कारणों से हमारी यह राय है कि 111वीं रिपोर्ट के साथ भेजे गए विधेयक के प्राप्त रूप में प्रस्तावित परिभाषा को, आगे उल्लिखित²² परिवर्तनों के साथ ग्रहण करना अधिक उपयुक्त होगा। हम तदनुसार सिफारिश करते हैं।²³

पार टिप्पण—अध्ययन 6

1. 85वीं रिपोर्ट (30-5-1980), पैरा 9.15.

2. ए० आई० आर० 1987 उच्च० न्या० 2158.

3. ए० आई० आर० 1987 उच्च० न्या० प० 1695 और 1696 पर उल्लिखित।

4. इस प्रश्न पर गुजरात राज्य सङ्केत परिवहन निगम बनाम रमनभाई प्रभातभाई, ए० आई० आर० 1987 उच्च० न्या० 1690 पर टिप्पण भी देखिए।

5. 1978 सी० एम० एन० डी० 7054.

6. रिपोर्ट सं० 56(उच्च० न्या०) 373.

7. घातक दुर्घटना अधिनियम, 1976 की धारा 1 जो न्याय प्रशासन अधिनियम, 1982 की धारा 3 द्वारा प्रतिस्थापित की गई।

8. इसमें केवल मृतक की पत्नी, पति, माता-पिता या बालक सम्मिलित किए गए थे:धारा 1क का द्वितीय पैरा।

9. 111वीं रिपोर्ट (16 मई, 1985) जो स्पष्टतया उच्चतम न्यायालय में उस समय उपलब्ध नहीं थी जब कुही मुहम्मद के मामले में निर्णय हुआ था, पूर्व पृष्ठ।

10. धारा 2(ब)। इसमें सम्बंधियों की सूची है जो मृत कर्मकार पर आश्रित होने के आधार पर है। इस अधिनियम की स्लीम कुछ भिन्न है और कम से कम इस समय तो विचारणीय कानून में नहीं रखी जानी चाहिए। विधि आयोग ने अपनी 132वीं रिपोर्ट में सुझाव दिया है कि परिभाषा में सुधार करके पत्नी, पति, संतान, आश्रित माता-पिता और मृतक के पुत्र की विधवा और संतान को उसमें सम्मिलित किया जाना चाहिए।

11. अब भारतीय रेल अधिनियम, 1989 द्वारा प्रतिस्थापित जिस पर आये विचार किया गया है।

12. रिपोर्ट का अध्याय 5.

13. ऐसे व्यक्ति को स्पष्ट रूप से ‘दत्तकगृहीत पिता’ कहा जा सकता है।

14. पहले उद्धृत।

15. ये परिभाषाएं 'सदोष मृत्यु विधेक 1985' नामक विधेयक ने प्राप्ति में धारा 2 और 4 (3) के रूप में दी गई हैं। सम्भवतः परिभाषा की दो भागों में विभाजित करना अनावश्यक था।

16. धारा 123(ब)

17. यह पूरी तरह स्पष्ट नहीं है क्योंकि माता-पिता, खंड (1) के अंतर्गत, केवल तब आश्रित के रूप में अंहित हैं जब बालक अविवाहित या अवयस्क हो। अंतर यह प्रतीत होता है कि दूसरी दशा में माता-पिता स्वतः सम्मिलित होंगे जबकि, यदि मृतक विवाहित या वयस्क रहा हो, तो केवल आश्रित माता-पिता परिभाषा में आएंगे।

18. खंड 11 के विपरीत, इसमें मृतक यात्री पर पूरी तरह आश्रित होने की अपेक्षा है।

19. ये परिभाषाएं कर्मकारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 जैसा कि वह 1966 के अधिनियम 44 और 1989 के अधिनियम 29 धारा 2 (6क) द्वारा संशोधित रूप में हैं, और वायु वहन अधिनियम, 1972 [धारा 5(2) का स्वीकारण] में भी हैं। तथापि, केवल दोनों परिभाषाओं पर विचार करना पर्याप्त है क्योंकि उनमें वे सभी वर्षे आ जाते हैं जिन पर प्रश्नगत मृत्यु का प्रभाव पड़ता है। किर भी जैसे कि पहले संकेत दिया गया है, यह अवश्यक है कि इन सभी परिभाषाओं में किसी समय ऐसा संशोधन किया जाना चाहिए कि जिससे उस क्षेत्र में, जिसमें विसंगतियाँ हैं, एक रूपरक्ता आ जाए।

20. कूर्हे मुहम्मद बनाम अहमद कुट्टी, ए० आई० आर० 1987 उच्च० न्या० 2158 और गुजरात राज्य सङ्कक परिवहन निगम बनाम रमनभाई, ए० आई० आर० 1987 उच्च० न्या० 1690 में।

21. धाराकुर्हे मुहम्मद अधिनियम, 1855 की धारा 1क (तीसरा पैरा)। विधि आयोग की 111वीं रिपोर्ट में संलग्न प्राप्त विधेयक की धारा 6 (1) भी। तथापि स्पष्ट रूप से नहीं कहा गया है किन्तु मोटरवाहन अधिनियम, 1988 और रेल अधिनियम, 1989 एक समान होने चाहिए।

22. पूर्व अध्याय 12।

23. वास्तव में हम यह सिफारिश करना चाहेंगे कि रेल अधिनियम, 1989 में दी गई और अन्य अधिनियमों, जैसे, कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923, राज्य बीमा अधिनियम, 1948, वायु वहन अधिनियम, 1991 और सार्वजनिक दायित्व बीमा अधिनियम, 1991 में दी गई परिभाषाएं भी इसी परिभाषा के अनुरूप होनी चाहिए।

अध्याय 7

अधिकरण की अधिकारिता

7.1 1939 के अधिनियम की धारा 110क¹ यह उपबन्ध करती है कि मोटर दुर्घटना की बाबत प्रतिकर के लिए आवेदन उस दावा अधिकरण के समक्ष प्रस्तुत किया जाना चाहिए जिसकी उस क्षेत्र पर अधिकारिता है जिसमें दुर्घटना हुई है। विधि आयोग ने, इस उपबन्ध का अनुमोदन एक पूर्वतर रिपोर्ट² में किया था किन्तु एक बाद की रिपोर्ट³ में आयोग ने इस समस्या की गहराई से परीक्षा की और सुझाव दिया कि वह क्षेत्र व्यापक होना चाहिए ताकि आवेदन अधिकरण की उस खंडपीठ के सामने भी फाइल किया जा सके जिसकी अधिकारिता के क्षेत्र में दावाकर्ता निवास करता है, कारोबार करता है, या लाभ के लिए स्वयं कार्य करता है और दावाकर्ता को यह विकल्प होना चाहिए। यह प्रतीत होता है कि 1988 का अधिनियम⁴ बनाते समय इस सुझाव पर विचार नहीं किया गया। इस रिपोर्ट में दिए गए आधारों पर हम पुनः सिफारिश करते हैं कि नए अधिनियम की धारा 166 में उचित संशोधन किया जाए। अगर यह स्वीकार योग्य नहीं समझा जाए तो यह उपबन्ध होना चाहिए जो उचित मामलों में मामले को एक अधिकरण से दूसरे को स्थानांतरित करते में समर्थ बना सके जैसी कि 85वीं रिपोर्ट में सिफारिश की गई है।⁵

पाद टिप्पणी-अध्याय 7

1. 1978 के अधिनियम 47 द्वारा जोड़ा गया।
2. 85वीं रिपोर्ट (30 मई, 1980)।
3. 119वीं रिपोर्ट (19 फरवरी, 1987)।
4. अधिनियम 1987 के विधेयक सं. 56 के० अनुसार बनाया गया था जिसे सम्भवतः आयोग की रिपोर्ट को देखने से पहले तैयार किया गया था।
5. प्रस्तावित संशोधन के लिए आगे अध्याय 12 देखिए। कुछ कठिनाई-पूर्ण मामले हो सकते हैं, यदि इस सुझाव पर अमल किया जाता है किन्तु मुश्किल मामलों में व्यक्ति पक्षकार अंतरण के लिए उच्चतम न्यायालय में जा सकते हैं।
6. 85वीं रिपोर्ट का पैरा 7.12 देखिए।

ग्रस्त व्यक्ति को हुई क्षति गंभीर प्रकृति की हो; वह बेहोशी में हो या उसे लम्बे समय तक अस्पताल में रखना या इलाज में रखना आवश्यक हो और इन कारणों से वह बारह मास की विहित अवधि के भीतर आवेदन प्रस्तुत करने में असफल रहे।

8.6 आयोग के समक्ष ऐसे अभ्यावेदन आए हैं कि व्यवहार में भी, बहुत से आवेदन सारे देश में केवल विलंब के आधार पर खारिज कर दिए जाते हैं और कठोर काल परिसीमा को उन दुर्घटनाओं की बाबत भी लागू किया जा रहा है जो 1988 के संशोधन² के पूर्व घटी है और परिणामस्वरूप वे आवेदन जो पहले ग्रहण कर लिए गए खारिज कर दिए गए हैं।

8.7 इस प्रश्न के सभी पहलुओं पर विचार करने के पश्चात् आयोग की राय है कि धारा 110(3) के परन्तुक की भाषा धारा 166(3) के वर्तमान उपबंध की अपेक्षा अधिमान्य है। हमारे विचार में, 1939 के अधिनियम में रखा गया उपबंध सभी संबंधित व्यक्तियों के हितों की रक्षा करता था। उसमें सामान्यतया छह मास की अवधि के भीतर आवेदन दाखिल करने की अपेक्षा की गई थी और अधिकरण को उचित मामलों में इस अपेक्षा को शिथिल करने की शक्ति दी गई थी। विभिन्न प्रकार की उन स्थितियों की कल्पना करना कठिन है जिनके कारण आवेदन दाखिल करने में देरी हो सकती है और एक कठोर अधिकतम समय सीमा थोपना, जाहे वह कितनी भी उदार हो, न्याय के हित की पोषक नहीं होगी। हमारी दृष्टि में, परिसीमा की एक छोटी अवधि विहित करना और विहित सीमा के पश्चात् आवेदनों को ग्रहण करने का अधिकार अधिकरण के स्वविवेक पर छोड़ना ही एक उचित मार्ग होगा, परन्तु यह तब जब पर्याप्त कारण दर्शाया जाए; और परिसीमा काल को बढ़ाना और उसे कठोर बनाना ठीक कदम नहीं होगा।

8.8 उक्त कारणों से हम सिफारिश करते हैं कि धारा 166(3) में से “किन्तु बारह मास के अपश्चात्” शब्दों का लोप किया जाए।

पाद टिप्पण—अध्याय 8

1. श्री मध्यूज जे० नेदुमपरा, अधिवक्ता से प्राप्त ता० 17-12-93 के पत्र में कहा गया है कि कुछ संसद् सदस्यों ने सरकार का ध्यान इस ओर अक्षित किया है और एक प्राइवेट सदस्य विदेशी भी इस विषय पर लाया जाने वाला है।

2. विनोद गुलदास रायकर बनाम नेशनल इंशोरेंस क० लिमिटेड, ए० आई० आर० उब्ब० न्या० 2156 के निर्णय के आधार पर कि संशोधन भूतकाली प्रभाव से है।

अध्याय 8

दावे के लिए परिसीमा काल

8.1 1939 के अधिनियम की धारा 110(3) में मूल रूप से यह उपबंध किया गया था कि मोटरयान दुर्घटना से हुई क्षति की बाबत प्रतिकर के लिए आवेदन दुर्घटना होने के 60 दिन के भीतर किया जाना चाहिए तथापि, इस उपधारा का परन्तुक दावा अधिकरण को उक्त अवधि के बाद भी आवेदन ग्रहण करने के लिए समर्थ बनाता है यदि उसका यह समाधान हो जाता है कि आवेदक पर्याप्त कारण से समय के भीतर दावा करने से निवारित रहा था। 1969 के अधिनियम 56 से इस उपधारा में संशोधन करके परिसीमा काल को 60 दिन से बढ़ाकर 6 मास स्पष्ट रूप से इसलिए कर दिया गया था क्योंकि मूलतः विहित 60 दिन की अवधि बहुत कम समझी गई थी और उससे बहुत कठिनाई होती थी।

8.2 1988 के अधिनियम में, 1939 के अधिनियम की धारा 110(क)(3) की शर्तों को पुनः अधिनियमित करते समय एक तात्त्विक परिवर्तन कर दिया गया। 1988 के अधिनियम की धारा 166(3), जो 1939 के अधिनियम की धारा 110(3) की तत्स्थानी है, इस प्रकार है :

“प्रतिकर के लिए कोई आवेदन तभी ग्रहण किया जाएगा जब वह दुर्घटना होने के 6 मास के भीतर किया जाता है, अन्यथा नहीं :

परन्तु दावा अधिकरण उक्त 6 मास की अवधि समाप्त होने के पश्चात् किन्तु 12 मास के अपश्चात् ग्रहण कर सकेगा यदि उसका यह समाधान हो जाता है कि आवेदक समय के भीतर आवेदन करने से पर्याप्त कारण से निवारित रहा था।”

रेखांकित शब्दों को जोड़ने के कारण अधिकरण की शक्ति 6 मास की अवधि तक आवेदन फाइल करने में विलम्ब के माफ करने तक सीमित हो गई थी। दूसरे शब्दों में, यदि आवेदन परन्तुक में विनिर्दिष्ट 12 मास की अवधि के पश्चात् दाखिल किया जाए तो अधिकरण को अधिग्रहण करने की शक्ति नहीं होगी और वह उसे काल-वांछित के रूप में रद्द करने के लिए बाध्य होगा।

8.3 मोटरयान विधेयक, 1988 से उपावद्ध खण्डों पर टिप्पणी में इस परिवर्तन के कारण नहीं दिए गए थे जबकि 1939 के अधिनियम की धारा 110(क) को पुनः अधिनियमित किया गया था। सम्भवतः, विधान-मंडल के ध्यान में आवश्यक साक्ष्य जुटाने में होने वाली वह बाधाएं और कठिनाइयाँ रही होंगी जो प्रतिकर के लिए आवेदन दुर्घटना के बहुत दिन पश्चात् प्रस्तुत करने से पैदा हो सकती थीं और इसी कारण उसने सभी मामलों और स्थितियों से निपटने के लिए 12 मास की काल सीमा को पर्याप्त समझा होगा।

8.4 आयोग को विभिन्न क्षेत्रों से ऐसे अभ्यावेदन प्राप्त हुए हैं कि नया उपबंध, जिसमें अधिनियम के अधीन दावे करने के लिए कठोर काल सीमा रखी गई है, गम्भीर कठिनाई पैदा कर रहा है और इसे हटा दिया जाना चाहिए।¹

8.5 आयोग ने, इस प्रश्न पर विचार किया है और उसकी यह राय है कि सुविधा का जुकाम ऐसी परिसीमा काल विहित करने के पक्ष में है, जिसे अधिकरण उचित मामलों में शिथिल कर सके। मोटरयान दुर्घटनाओं के शिकार अधिकांशतः गरीब और अनपढ़ होते हैं जिनका कानूनी उपबंधों के बारे में अज्ञान का तथा कानूनी और वित्तीय सहायता प्राप्त करने के बारे में कठिनाइयों का निदान दुष्कर है। यदि एक कठोर काल सीमा लादी जाती है तो उनका हित नहीं होगा भले ही यह सीमा 12 मास की ही क्यों न हो। अन्य मामलों में भी, आवश्यक व्यौरे निश्चित करने, आवश्यक प्रमाणपत्र प्राप्त करने की प्रक्रिया से गुजरने और यदि दुर्घटना दूरस्थ स्थान पर घटी हो तो वहाँ तक यात्रा करने के लिए काफी समय चाहिए। ऐसे मामले प्रायः आते हैं जहाँ दुर्घटना

किया गया दावा किसी ऐसी मृत्यु या शारीरिक क्षति की बाबत है जो किसी व्यक्ति को सार्वजनिक स्थान में मोटरयान का उपयोग करने से कारित या उद्भूत हुई है।"

अध्याय 9

अन्य कानूनों का प्रभाव

9.1 अधिनियम की धारा 167 में यह अधिकृति है कि जब इस अधिनियम के अधीन दावा ऐसे व्यक्ति द्वारा किया जाता है जो कर्मकार प्रतिकर अधिनियम के अधीन दावा करने का भी हकदार है तो प्रतिकर का दावा करने वाला व्यक्ति दोनों में से किसी एक अधिनियम के अधीन दावा कर सकता है दोनों के अधीन नहीं है पहले यह इंगित किया जा चुका है¹ कि ऐसे मामलों में उपचार के विकल्प का यह उपबंध सहजताप्रद नहीं है और कर्मकार या कर्मचारी को, जिसको मोटर दुर्घटना में क्षति पहुंची है (या मृत्यु की दशा में उसके आश्रितों को) वहीं उपचार अधिनियम के अधीन उपबंध होना चाहिए जो ऐसी दुर्घटना में क्षतिग्रस्त या मृत होने वाले किसी अन्य व्यक्ति को उपलब्ध है। अतः धारा 167 के संशोधन की आवश्यकता है।

9.2 उन मामलों को उद्भूत करना भी आवश्यक है जहां कोई कर्मचारी जो मोटर दुर्घटना में क्षतिग्रस्त हुआ हो (और उसकी मृत्यु होने की दशा में उसके आश्रित) कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 के अधीन फायदों को प्राप्त करने के हकदार हो जाते हैं। यह उपबंध करना उचित होगा कि ऐसे दावेदार को भी इस अधिनियम के अधीन ही अपने उपचार प्राप्त करने चाहिए न कि 1948 के अधिनियम के अन्तर्गत।

9.3 यह सलाह देना भी उचित है कि इस बात को स्पष्ट कर दिया जाए कि जहां मोटरयान दुर्घटना के परिणामस्वरूप मृत्यु हो जाती है वहां इस अधिनियम के उपबंध वातक दुर्घटना अधिनियम, 1855 पर अभिभावी होंगे। ऐसा उपबंध आवश्यक है क्योंकि वातक दुर्घटना अधिनियम, 1855 के अन्तर्गत कुछ ऐसी वंदिशें जगहीं गई हैं जिन्हें वर्तमान कानून में सम्प्रलिपि करना अनुचित होगा।²

9.4 मोटरयान अधिनियम एक विशेष अधिनियमिति है। जिसमें मोटरयान दुर्घटनाओं की बाबत उत्पन्न सभी वायित्वों को संहितावद्वा किया गया है और यह अधिनियम ही एक मात्र संहिता होनी चाहिए जिसकी सीमाओं में दुर्घटनाओं में क्षतिग्रस्त व्यक्ति या मृत व्यक्ति के आधित उपचार प्राप्त करें, भले ही कुछ अन्य ऐसे कानून हों जो साधारणतया कुछ विशेष हितों की रक्षा करते हों (उदाहरण के लिए, कर्मकारों और कर्मचारियों के लिए)।³ कुछ स्थितियों में उन्हें हुई क्षतियों की बाबत।

कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 और कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 सामान्य प्रकृति के हैं और कार्यशालाओं, कारखानों या व्यापार परिसरों में कार्यरत सभी वर्गों के कर्मचारियों को अनुतोष प्रदान करते हैं। इन कानूनों में नियोजन के दीरान हुई मृत्यु या क्षति की दशा में प्रतिकर की व्यवस्था है किन्तु क्योंकि मोटरयान अधिनियम, 1988 बाद का कानून है और क्योंकि उसमें मोटरयान दुर्घटना में होने वाली क्षति या मृत्यु के लिए विशेष रूप से, प्रतिकर का उपबंध किया गया है। अतः, केवल यही अधिनियम उन कर्मकारों पर भी लागू होना चाहिए जो मोटर दुर्घटना में क्षतिग्रस्त या मृत हो जाते हैं और अन्य अधिनियमों को लागू होने से अपर्वर्जित किया जाना चाहिए।

9.5 अतः, हम सिफारिश करते हैं कि अधिनियम की वर्तमान धारा 167 के स्थान पर निम्नलिखित धारा एवी जानी चाहिए:—

“वातक दुर्घटना अधिनियम, 1855 अथवा कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 अथवा कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 अथवा तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, केवल इस अधिनियम के उपबंध ही, न कि किसी अन्य अधिनियम के उपबंध वहां लागू होंगे जहां प्रतिकर के लिए

पाद-टिप्पणी—अध्याय 9

1. अपर पैरा 3.10 से 3.14 वैधिए।
2. उदाहरण के लिए, ऐसे मामलों में प्रतिकर का दावा करने के हकदार व्यक्तियों की बाबत अपर अध्याय 6 में की गई वर्चा वैधिए।
3. विशिष्टतया, क्योंकि इस अधिनियम के अधीन उपबंधित फायदे उन अधिनियमसंतियों के अन्तर्गत कर्मचारियों को उपलब्ध फायदों से कम लाभप्रद नहीं हैं।

शिक्षा के लिए या पुत्री के विवाह के लिए आवश्यक हो)। तुरन्त भुगतान के लिए ऐसी और भी विचारणीय परिस्थितियां आ सकती हैं।

अध्याय 10

प्रतिकर का वितरण

10.1 अधिनियम का एक मात्र उपबंध जिसमें इस विषय की चर्चा है धारा 168 (3) है। यह उपबंध करती है कि “वह व्यक्ति जिससे अधिनियम के अनुसार किसी रकम के संदाय की अपेक्षा है” दावा अधिकरण द्वारा निर्दिष्ट रीति से, अधिनियम के घोषणा की तारीख से तीस दिन के भीतर, ऐसे अधिनियम समस्त रकम जमा करेगा। यदि रकम इस प्रकार जमा कर दी जाती है तो वह संभवतः¹ उन संबंधित पक्षकारों को, जिनके पक्ष में अधिनियम किया गया है, अधिकरण को संदाय के लिए आवेदन करने पर संदर्भ कर दी जाएगी। यदि रकम इस प्रकार जमा नहीं की जाती है तो वह दायित्वाधीन पक्षकार से, संबंधित लाभग्राही द्वारा आवेदन करने पर, इस प्रकार से वसूल की जाएगी मानो वह भू-राजस्व का वकाया हो।²

10.2 हमारी राय में, इस उपबंध की कठोरता को कुछ हद तक, कठिनाई की दशा में अधिकरण को स्वविवेकाधिकार प्रदान करके, ताकि वह ऊपर उल्लिखित अवधि को बढ़ा सके, कम किया जाना चाहिए। ऐसा शिथिलीकरण आवश्यक है क्योंकि प्रतिकर की रकम काफी बड़ी हो सकती है और कभी-कभी उसका संदाय बीमा कंपनी द्वारा नहीं बल्कि किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा करना पड़ सकता है जिसकी वित्तीय स्थिति सुदृढ़ न हो। अतः, हम धारा 168 (3) में निम्नलिखित आशय का एक परन्तुक जोड़ने का सुझाव देते हैं :

“परन्तु अधिकरण, उपयुक्त मामलों में और ऐसे कारणों से, जो लेखबद्ध किए जाएंगे, रकम जमा करने के लिए ऊपर उल्लिखित अवधि को बढ़ा सकता है।”

10.3 हम एक और पहलू का उल्लेख भी करना चाहते हैं जिस पर कानूनी स्पष्टीकरण होना अच्छा होगा। प्रारंभिक वर्षों में, अधिकरण प्रतिकर की पूरी रकम में से उसके हकदार आवेदकों को या उनके अधिकारियों या प्रतिनिधियों को रकम का सीधा संदाय करने का निर्देश दिया करते थे। किन्तु इसके कारण अनेक कठिनाइयां और कुरीतियां पैदा हो गई और परिणामस्वरूप, कुछ पूर्व सावधानियां बरतना अपरिहर्य हो गया।³ ऐसी कुछ कठिनाइयां, कुरीतियां, और स्थितियां, जिनके लिए उपबंध करना आवश्यक है, निम्नलिखित हैं :

- (क) दावेदार प्रायः निर्वन और अनग्रह होते हैं और प्रतिकर की रकम दलालों द्वारा निकाली जाती है और उसका कुप्रयोग किया जाता है।
- (ख) उन मामलों में जहां दावेदार आवश्यक या विकृत प्रस्तिष्ठक का हो वहां प्रतिकर की रकम का भुगतान स्थगित करना पड़ता है और उससे होने वाली आमदनी का उपयोग आवेदक-कर्ता के फायदे के लिए प्रयोग करने की व्यवस्था करनी पड़ती है। यह रास्ता अनेक बार ऐसे दावेदारों के मामले में करना उचित हो सकता है जिन्हें नियमित आवर्ती आमदनी की बहुत आवश्यकता हो और जिन्हें प्रतिकर की पूरी रकम एक साथ देने का परिणाम उस रकम की बर्दादी हो।
- (ग) कभी-कभी, उपरोक्त वर्ग के किसी व्यक्ति की दशा में, जिसका प्रतिकर जमा रख लिया गया हो, ऐसी स्थिति उत्पन्न हो सकती है जिसमें पूरी रकम या उसका भाग तुरन्त देता पड़े (उदाहरण के लिए जहां रकम चिकित्सा के लिए या अवयस्क वालकों की उच्च

10.4 जिन विभिन्न परिस्थितियों की ऊपर चर्चा की गई है, उन्हें ध्यान में रखते हुए, हमें यह उचित प्रतीत होता है कि अधिकरण के मार्गदर्शन के लिए कानून में ही ऐसी परिस्थितियों का उल्लेख कर दिया जाए। हम यह स्पष्ट करना चाहेंगे कि हमने जिन स्थितियों की कल्पना की है वे पूर्ण नहीं हैं; केवल उदाहरण मात्र हैं, और अधिकरण किसी विशेष मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के अनुसार, प्रतिकर का एक बार में थोड़ा-थोड़ा भुगतान करने का आदेश दे सकता है। तथापि, हमारी राय है कि अधिकरण को इस सम्बन्ध में स्पष्ट शक्ति होनी चाहिए और इस कारण से सिफारिश करते हैं कि धारा 168 में निम्नलिखित रूप में उपद्धारा (4) जोड़ी जाए :

“(4) (क) अधिकरण, उपयुक्त मामले में, आवेदक की असमर्थता, को, अशिक्षित विधवा, अवयस्क या विकृत प्रस्तिष्ठक होने के कारण को ध्यान में रखते हुए, निर्देश दे सकता है कि प्रतिकर की सम्पूर्ण रकम या उसका भाग आवेदक को देने की अपेक्षा जमा रखा जाए या बैंक में विनिधान किया जाए या अन्य विन्यासी प्रतिभूतियों में उतनी अवधि के लिए और ऐसे निवन्धनों और शर्तों पर, जो अधिकरण लाभग्राही के हित की सुरक्षा के लिए आवश्यक समझे, विनिहित किया जाए।

(ख) जहां अधिकरण किसी रकम को जमा या विनिहित करने के लिए बंद (क) के अधीन निर्देश देता है और जब तक रकम सम्बन्धित आवेदकर्ता को नहीं दे दी जाती तब तक समय-समय पर उससे प्राप्त होने वाला ब्याज या आय या उसका भाग आवेदक को दिए जाने या उसके फायदे के लिए ऐसी रीत से उपयोग में लाने का निर्देश दे सकता है जो अधिकरण समय-समय पर निर्देश करें।

(ग) जहां अधिकरण इस अधिनियम के अधीन प्रतिकर की किसी रकम में से संदाय करने का निर्देश दे वहां वह ऐसे निर्देश जारी कर सकेगा या ऐसी शर्तें और निर्धारित कर सकेगा जो यह सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक हो कि प्रतिकर आशयित लाभग्राही को प्राप्त हो जाता है या उसे फायदा पहुंचाता है।”

पाद-टिप्पणि—अध्याय 10

1. इस निमित्त कोई विनिर्दिष्ट कानूनी उपबन्ध नहीं है।
2. अधिनियम की धारा 174।
3. ऐसी पूर्ववधानियां हाल ही में प्रायः बरसी गई हैं। इस संदर्भ में उच्चतम न्यायालय द्वारा युनियन कार्बाइड कार्पोरेशन अन्य बनाम भारत संघ राज्य (1991-4 ईस० सी० 584) में अधिकारित मार्ग निर्वेश देखिए जिनका अनुभोदन भूजीमाई अजरम भाई परिजन तथा अन्य बनाम युनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड (1982-1 गुज० एल० 756) में किया गया है। केंद्रीय आरोडी०सी० बनाम सुसम्मा यामस भी देखिए (1933-4 स्कैल 643 पृ० 650)।

अध्याय 11

ब्याज का संदाय

11.1 जहाँ किसी व्यक्ति को, उसके शरीर या सम्पत्ति को हुई क्षति के लिए, या किसी व्यक्ति के, जिसकी मोटर दुर्घटना में मृत्यु हो गई हो, विधिक प्रतिनिधि को प्रतिकर देय हो जाता है तो यह अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि प्रतिकर की रकम प्रभावित व्यक्तियों को अत्यन्त शीघ्र दी जानी चाहिए। वास्तव में, धारा 140 के अधीन तुटि विहोनता के अधार पर, बेय प्रतिकर की रकम अथवा धारा 161 के अधीन टक्कर भारकर भागने की दुर्घटना के सम्बन्ध में देय रकम धारा 163 के अधीन निधि का प्रशासन करने वाले प्राधिकारी या बीमाकर्ता द्वारा तुरन्त दी जानी चाहिए या अधिकरण के पास जमा की जानी चाहिए, तथापि, समस्त इत्ताग्रिकान के रहते हुए भी और सुसंगत प्रक्रियाओं को शीघ्र पूरा करने के प्रयासों के बावजूद निश्चित ही, ऐसे मामलों में, प्रतिकर की रकमों के संदायों में कुछ विलम्ब होना अपरिहार्य है। इसमें संदेह नहीं है कि अधिकरण को नक्सान और क्षतिपूर्ति के लिए, जो इस इन प्रशासनिक या न्यायिक विलम्ब के कारण होता है और जिसके लिए वह उत्तरदायी नहीं हैं, क्षतिपूर्ति की जानी चाहिए। वह एकमात्र तरीका जिससे क्षतिपूर्ति की जा सकती है उस अवधि की बावत बाकी देय जिस अवधि तक संदाय में देरी है अंतिम रूप से अवधारित प्रतिकर की रकम पर ब्याज की अदायगी है।

11.2 अधिनियम की धारा 171 में इस अनुदेश के लिए यह व्यवस्था नहीं की गई है। धारा इस प्रकार से है:—

“जहाँ अधिकरण इस अधिनियम के अधीन किए गए प्रतिकर के दावे को स्वीकार करता है वहाँ अधिकरण यह निदेश दे सकता है कि प्रतिकर की रकम के अतिरिक्त साधारण ब्याज भी ऐसी दर पर और ऐसी तारीख से जो दावा करने की तारीख से पूर्ववर्ती नहीं हो और जो उसके द्वारा निर्दिष्ट की जाएगी।”¹

ब्याज के संदाय का उपबंध 1939 के अधिनियम में 1969 के संशोधन अधिनियम 56 द्वारा 2-9-77 से धारा 110 गण जोड़कर किया गया था जिसमें न्यायालय अथवा दावा अधिकरण द्वारा प्रतिकर के दावे को स्वीकार करते समय ब्याज देने के लिए उपबंध किया गया है और वह उपबंध 1988 के अधिनियम में भी चला आ रहा है।²

11.3 उपबंध की मुख्य बातें निम्नलिखित हैं:—

(क) ब्याज मंजूर करना न्यायालय का विवेकाधिकार है। न्यायालय अपने विवेकानुसार ब्याज का आदेश कर सकता है या आदेश करने से इंकार कर सकता है।³

(ख) ब्याज की दर न्यायालय के विवेक पर छोड़ दी गई है। व्यवहार में यह देखा गया है कि यह दर गत वर्षों में 4 प्रतिशत प्रति वर्ष तक रही है।⁴

(ग) धारा में यह अधिकथित है कि ब्याज अधिक से अधिक आवेदन की तारीख से आरम्भ होना चाहिए किन्तु न्यायालय को किसी पश्चात्वर्ती तारीख से ब्याज अधिनिर्णीत करने का विशेषाधिकार है।

(घ) इस उपबंध में प्रतिकर की समस्त रकम पर ब्याज की एक दर⁵ रखी गई है।

(ङ) स्पष्ट है कि ब्याज वास्तविक संदाय की तारीख तक दी जाएगी।

11.4 विधि आयोग ने, अपनी 85वीं रिपोर्ट में यह सुझाव दिया था कि धारा 110 गण का पुनः निरीक्षण करके न्यायालय से यह अपेक्षा की जाए कि ब्याज, यदि कोई विशेष परिस्थितियाँ न हों तो, 12 प्रतिशत से कम नहीं हों। आयोग की सिफारिश कियाजित नहीं की गई है। हम समझते हैं कि धारा 110 गण में संशोधन की आवश्यकता है। हमारी राय में ब्याज के संदाय के सिद्धांत को कानून में अधिक विनिर्दिष्ट रूप से सम्मिलित करना अच्छा होगा। यह स्पष्ट किया जा सकता है कि ब्याज देना तब तक बाध्यकर है जब तक ब्याज देने से इन्कार करने के उचित कारण विद्यमान न हों। यद्यपि, सभान्यतया, सिद्धांत रूप से, ब्याज की दर न्यायालय के विवेक पर छोड़ दी गई है और वह चालू बाजार दर से अधिक नहीं होनी चाहिए तथा वह प्रत्येक मामले में उस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के प्रकाश में अधिनिर्णीत की जाएगी, किन्तु समय-समय पर यह सुझाव आया है कि ब्याज की दर विनिर्दिष्ट की जानी चाहिए अथवा वह न्यूनतम और अधिकतम ब्याज दर स्पष्ट की जानी चाहिए जो दो जा सकती है। कानूनी उपबंध के अभाव में, ब्याज की दर का अधिनिर्णय एक समान नहीं रहा है और वह एक अधिकरण से दूसरे अधिकरण द्वारा भिन्न-भिन्न दरों पर दी गई है। अतः यह उचित होगा कि इस सम्बन्ध में कानूनी उपबंध, सम्मिलित किया जाए। हमारे विचार में तुरन्त संदाय को प्रोत्साहित करने के लिए अधिकरण को एक निश्चित समय के लिए एक निश्चित ब्याज दर विनिर्दिष्ट करने का विवेकाधिकार दिया जाना चाहिए किन्तु इस शर्त पर कि यदि निश्चित समय के भीतर प्रतिकर की रकम जमा नहीं कर दी जाती तो उस दशा में उच्चतर दर पर ब्याज देय होगा।

11.5 ऊपर जिन पहलुओं की चर्चा की गई है उन्हें ध्यान में रखते हुए, हम सिफारिश करते हैं कि विद्यमान धारा 171 के स्थान पर निम्न उपबंध रखा जाए:—

“धारा 171—दावा स्वीकार करने की दशा में ब्याज का अधिनिर्णय:—

(i) जहाँ कोई अधिकरण इस अधिनियम के अधीन प्रतिकर के दावे को स्वीकार करता है वहाँ वह यह निदेश करेगा कि प्रतिकर की रकम के अतिरिक्त, धारा 166 के अधीन व्यवधान की तारीख से संदाय की तारीख तक, 15 प्रतिशत प्रतिवर्ष से अन्यून दर पर साधारण ब्याज भी दिया जाएगा।

परन्तु यदि अधिकरण का ऐसे कारणों से जो लेखबद्ध किए जाएंगे, यह समाधान हो जाता है कि 15 प्रतिशत प्रतिवर्ष से कम दर पर ब्याज अथवा कम अवधि के लिए ब्याज किसी विशेष मामले में दिया जा सकता है तो वह ऐसा निदेश दे सकता है।

(2) उपधारा (1) के उपबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, अधिकरण, उपयुक्त मामले में, निदेश दें सकता है कि ब्याज एक विनिर्दिष्ट दर पर दिया जाए तथा प्रतिकर की रकम निश्चित अवधि के भीतर संदाय या जमा करने में लुटि होने की दशा में, उसी अवधि के आगे भी ब्याज उच्चतर दर पर दिया जाएगा।”

यह सुझाव देते सभी हम वास्तव में विधि आयोग की 85वीं रिपोर्ट में सम्मिलित सिफारिशों को ही दुहरा रहे हैं और हाल ही के वर्षों में ब्याज की वाणिज्यिक दरों में वृद्धि के परिणामस्वरूप 12 प्रतिशत के स्थान पर 15 प्रतिशत दर की सिफारिश कर रहे हैं।¹¹

पाठ-टिप्पण—अध्याय 11

1. यह सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 34 और ब्याज अधिनियम, 1978 की धारा 3(1)(2) की तस्थीली है।

2. 1988 के अधिनियम की धारा 171 में केवल “दावा अधिकरण” का उल्लेख है। तथापि, इसमें कोई वास्तविक अन्तर नहीं पड़ता है क्योंकि दावा अधिकरण के आदेश से अपील मुनाने वाला न्यायालय भी समान अनुदेश मंजूर करने के लिए सक्षम है।

3. तथापि, यह निर्णय दिया गया है कि यह एक न्यायिक विवेकाधिकार है जिसका प्रयोग प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के अनुसार, उचित रूप से करना होगा और यदि व्याज का अधिनिर्णय नहीं दिया जाता है तो व्याज का अधिनिर्णय न देने के कारण लेखबद्ध किए जायेंगे। एक मामले में ऐसा किया गया था क्योंकि प्रतिकर की रकम बिना किसी विलंब के निश्चित कर दी गई थी और उसका तुरन्त भुगतान सुनिश्चित कर लिया गया था। एलिजावेथ मैथु बनाम वायुदेव 1990 ए.सी.जे. 461 (दिल्ली)।
4. एस०एस० मोणा की पुस्तक “ला आँफ कंपेन्शन फॉर रोगफूल डैथ” (1993) के अध्याय 6 के उपर्युक्त में इस सम्बन्ध में निर्णीत मुकद्दमों का विलचन विश्लेषण किया गया है।
5. तथापि, यह निर्णय हुआ है कि न्यायालय को यह व्यवस्था करने की छूट है कि रकम पर एक विशेष दर से नियत समय के लिए व्याज दिया जाए और यदि रकम समय के भीतर जमा नहीं कर दी जाए तो उचितर दर पर व्याज दिया जाए। देविए—यू इंश्योरेन्स कंपनी लिमिटेड बनाम श्याम भाई, अंजन भाई, 1987 ए.सी.जे. 688 (गुजरात), कमिशनर एन.सी.सी. पूप बनाम निर्मला मोहिराना, 1984 ए.सी.जे. 456 (उड़ीसा), नर्मदा चौधरी बनाम एम.ए.सी.टी., 1984 ए.सी.जे. 283 (गुवाहाटी)।
6. इंग्लिश कानून में विचारपूर्व और विचारपूर्व नुकसान के सम्बन्ध में व्याज की विभिन्न दरों को खबा गया है देविए कुकसन बनाम नोलैस (1979) ए.सी.जे. 216 (एच.एल.) और जैकोर्ड बनाम जी (1970) 2 क्यू.बी. 130 (सी.ए.)।
7. व्याज अधिनियम विषय पर विधि आयोग की 63वीं रिपोर्ट का पैरा 6.2 देखिए।
8. कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 में 6 प्रतिशत दर विनिर्दिष्ट की गई है। विधि आयोग की 62वीं रिपोर्ट (1974) में सुझाव दिया गया है कि इसे बढ़ाकर 9 प्रतिशत कर दिया जाए पैरा (3.54), जबकि 134वीं रिपोर्ट में (1989) इसे बढ़ाकर 15 प्रतिशत कर देने का सुझाव दिया गया है।
9. मोटररयान अधिनियम विषय पर 85वीं रिपोर्ट में सुझाव दिया गया है कि व्याज तब तक 12 प्रतिशत से कम नहीं होगा जब तक न्यायालय, ऐसे कारणों से जो लेखबद्ध किए जाएंगे, अन्यथा निर्देश न दें।
10. सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 1934 के अधीन न्यायालय व्याज की संविदा दर अवश्य किसी वाणिज्यिक संव्यवहार के संबंध में वाणिज्यिक बैंक द्वारा नियत की गई व्याज दर से कम दर पर व्याज देने का अधिनिर्णय दे सकता है।
11. न्यायालय पी.वी.दी.क्षेत्र की अधिकारी में, विधि आयोग की 85वीं रिपोर्ट (मई 1980) का अध्याय 14 देखिए।

अध्याय 12

सिफारिशें

अपर विचार किये गये कारणों से हम मोटररयान अधिनियम (1988) में निम्नलिखित संशोधन करने की सिफारिश करते हैं:—

धारा 140 :

1. धारा 140 की उपधारा (2) के स्थान पर निम्नलिखित रखें:

“(2) उपधारा के अधीन प्रतिकर की रकम किसी व्यक्ति की मृत्यु की बाबत एक लाख रुपए, किसी व्यक्ति की स्थायी निःशक्ता की बाबत 60 हजार रुपये और व्यक्ति को गंभीर क्षति की बाबत, जिसके परिणामस्वरूप, मृत्यु या स्थायी निःशक्ता न हुई हो तो 5 हजार रुपये नियत की जायेगी।” (पैरा 2.6)

धारा 147 :

2. (i) धारा 147 की उपधारा (1) के खंड (ख) के स्थान पर निम्नलिखित रखें:

“(ख) पालिसी में विनिर्दिष्ट व्यक्ति या व्यक्तियों के वर्ग का बीमा उपधारा (2) में विनिर्दिष्ट विस्तार तक ऐसे किसी दायित्व के बारे में कर दिया है जो बीमाकर्ता द्वारा किसी व्यक्ति की किसी सार्वजनिक स्थान में यान के प्रयोग से या कारण किसी व्यक्ति को नुकसान की बाबत बीमाकर्ता द्वारा उपगत दावे के पूर्ण रकम लिए होंगी।” (पैरा 3.9)

(ii) धारा 147 की उपधारा (1) के वर्तमान परन्तुक के स्थान पर निम्नलिखित परन्तुक रखा जाए:—

“परन्तु इस उपधारा में निर्दिष्ट पालिसी किसी संविदात्मक दावे के बारे में नहीं होगी” (पैरा 3.15)

(iii) धारा 147 की उपधारा (2) के मुख्य भाग के स्थान पर, जैसा कि वह इस समय है, निम्नलिखित रखा जाएगा:

“धारा 147 (2) उपधारा (1) के परन्तुक के अधीन रहते हुए, उपधारा (1) में निर्दिष्ट बीमा पालिसी किसी दुर्घटना की बाबत उपगत किसी दायित्व के लिए, किसी सार्वजनिक स्थान में यान के प्रयोग से या कारण किसी व्यक्ति को नुकसान की बाबत बीमाकर्ता द्वारा उपगत दावे के पूर्ण रकम लिए होंगी।”

धारा 147(2) का विद्यमान परन्तुक पूर्व रूप में ही रहेगा। (पैरा 3.17)

धारा 149 :

(3) धारा 149(4) में, “उपधारा (2) का खंड (ख)” के स्थान पर “उपधारा (2) का खंड (क)” पढ़ें। (पैरा 4.3)

धारा 161 :

4. धारा 161 में:

(i) उपधारा (1) में, विद्यमान खंड (क) के स्थान पर निम्नलिखित रखें:

(क) ‘स्थायी निःशक्ता’ का बही अर्थ है जो धारा 142 में उसका है’

(ii) उपधारा (3) के स्थान पर निम्नलिखित रखें :

“(3) इस अधिनियम और स्कीम के उपबंधों के अधीन रहते हुए, किसी टक्कर मारकर भागने की मोटर दुर्घटना के लिए एक नियत रकम प्रतिकर के रूप में संदत्त की जाएगी, जो कि निम्नलिखित होगी—

- (क) ऐसी दुर्घटना के परिणामस्वरूप किसी व्यक्ति की मृत्यु की बाबत, एक लाख रुपए।
- (ख) ऐसी दुर्घटना के परिणामस्वरूप किसी व्यक्ति की स्थायी निःशक्तता की बाबत, 60 हजार रुपए।
- (ग) ऐसी दुर्घटना के परिणामस्वरूप स्थायी निःशक्तता से भिन्न गंभीर क्षति की बाबत, 5 हजार रुपए।” (पैरा 5.2)

धारा 166 :

5. धारा 166 में—

(i) उपधारा (1) के अंत में निम्नलिखित स्पष्टीकरण जोड़ा जाए :

“स्पष्टीकरण : (1) इस धारा के प्रयोजनों के लिए, किसी दुर्घटना में मरने वाले व्यक्ति के सम्बन्ध में, “विधिक प्रतिनिधि” पद से अभिप्रेत है—

- (क) मृतक की पत्नी या पति अथवा पूर्व पत्नी या पूर्व पति।
- (ख) मृतक के माता-पिता या अन्य वंशज।
- (ग) मृतक की कोई संतान (जिसके अंतर्गत सौतेली संतान या अवैध संतान भी है) अथवा अन्य पूर्व पुरुष।

(घ) मृतक की विधवा, पुत्रवधु अथवा मृतक के मृत भाई की विधवा।

(ङ) मृतक के भाई-बहन, चाचा या चाची अथवा उसकी संतान।

(2) खंड (1) के प्रयोजनों के लिए, “संतान” के अंतर्गत गम्भीर संतान, जो बाद में जीवित पैदा हो, सौतेली संतान, दूतक संतान तथा ऐसा व्यक्ति भी है जिसका कि मृतक माता-पिता की हैसियत में था, और “माता-पिता” के अंतर्गत सौतेले माता-पिता, गृहीता माता-पिता में से कोई और ऐसे व्यक्तियों में से कोई भी है जो मृतक के माता-पिता की हैसियत में है।”¹

(3) इस स्पष्टीकरण के लिए संबंध स्थापित करने में—

(क) विवाह संबंध के कारण सम्बन्ध को समरक्तता से सम्बन्ध, अर्थरक्त से संबंध को पूर्ण रक्त से संबंध और किसी व्यक्ति की सौतेली संतान को उसकी संतान माना जाएगा।

(ख) किसी अवैध व्यक्ति को उसकी माता और विष्वात पिता की वैध संतान माना जाएगा।” (पैरा 6.5)

(ii) उपधारा (2) के मुख्य खंड के स्थान पर निम्नलिखित रखें :

“(2) उपधारा (1) के अधीन प्रत्येक आवेदन उस दावा अधिकरण को किया जाएगा जिसकी अधिकारिता उस क्षेत्र पर है जिसमें दुर्घटना हुई है, अथवा उस क्षेत्र पर है जिसमें आवेदक या त्वयियों में से कोई निवास करता है, अथवा उस क्षेत्र पर है जिसमें आवेदक या प्रत्ययियों में से कोई निवास करता है, वारोवार करता है या लाभ के लिए कार्य करता है और यह आवेदक के ही विकल्प पर होगा तथा वह ऐसे प्रारूप में होगा और उसमें ऐसी विशिष्टियां होंगी जो विहित की जाएं।” (पैरा 7.1)

(iii) उपधारा (3) के परन्तुक में से “परन्तु बारह मास के अपश्चात्” शब्दों का लोप किया जाए। (पैरा 8.8)

धारा 167 :

6 धारा 167 के स्थान पर, जैसी कि वह इस समय है निम्नलिखित रखें :

“167 अन्य अधिनियमों के लागू होने का अपवर्जन—

“वातक दुर्घटना अधिनियम, 1855 या कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 या कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम 1948 या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, इस अधिनियम के उपबन्ध ही लागू होंगे और कोई अन्य उपबन्ध वहां लागू नहीं होगा। जहां सार्वजनिक स्थान में मोटरयान के प्रयोग से या उसके कारण किसी व्यक्ति की मृत्यु या शारीरिक क्षति की बाबत प्रतिकर का दावा किया जाता है।” (पैरा 9.5)

धारा 168 :

7. (i) धारा 168 की उपधारा (3) में निम्नलिखित परन्तुक जोड़ें :

“परन्तु अधिकरण, उपयुक्त मामलों में और ऐसे कारणों से जो लेखबद्ध किए जायेंगे, रकम जमा करने के लिए ऊपर उल्लिखित अवधि को बढ़ा सकेगा।” (पैरा 10.2)

(ii) धारा 168 की उपधारा (3) के पश्चात् निम्नलिखित नयी उपधारा (4) अंतस्थापित करें :

“(4) (क) अधिकरण, उपयुक्त मामले में, आवेदक की असमर्थता को ध्यान में रखते हुए जो कि इस कारण है कि आवेदक अशिक्षित, विधवा, अवयस्क या विकृत मस्तिष्क का है। अथवा अन्यथा कोई बात है, यह निदेश दें सकेगा कि प्रतिकर की पूरी रकम या उसका कोई भाग आवेदक को संदत्त करने की अपेक्षा किसी वैकं में जमा की जाए या किसी वैकं में अथवा अन्य न्यासी प्रतिभूतियों में ऐसी अवधि के लिए ऐसे अनुबंधों और शर्तों पर, जो अधिकरण लाभग्राही के हित में सुरक्षित रखना आवश्यक समझे, विनिहित की जाए।”

(ख) जहां अधिकरण किन्हीं रकमों को खंड (क) के अधीन जब तक जमा रखने या विनिहित करने का निदेश देता है जब तक कि वे सम्बन्धित आवेदक को भुगतान नहीं कर दी जाती, वहां उस रकम पर या उसके ऐसे भाग पर उद्भूत होने वाली व्याज आय के बारे में यह निदेश दिया जा सकेगा कि वह आवेदक को संदत्त कर दी जाए या ऐसी रीति से उसके फायदे के लिए उपयोग में लाई जाए जैसा कि अधिकरण सभ्य-समय पर निदेश दें।

(ग) जहां अधिकरण इस अधिनियम के अधीन प्रतिकर को किसी रकम का संदाय करने का निदेश देता है वह ऐसे निर्देश जारी कर सकेगा या ऐसी शर्तें या निर्बन्धन अधिरोपित कर सकेगा जो वह यह सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक समझे कि प्रतिकर आशयित लाभग्राही के पास पहुंचता है या उसके फायदे के लिए है।” (पैरा 10.4)

धारा 171 :

8. धारा 171 के स्थान पर निम्नलिखित रखें :

“171 दावा स्वीकार किए जाने की दशा में व्याज का अधिनियम :

जहां अधिकरण इस अधिनियम के अधीन किए गए प्रतिकर के दावे को स्वीकार करता है वहां अधिकरण यह निदेश दें सकता है कि प्रतिकर की रकम के अतिरिक्त साधारण व्याज भी ऐसी दर

पर जो 15 प्रतिशत प्रतिवर्ष से कम नहीं होगी, धारा 166 के अधीन आवेदन की तारीख से संदाय की तारीख तक दी जाएगी:

परन्तु यदि अधिकरण का, ऐसे कारणों से जो लेखबद्ध किए जायेंगे, वह समाधान हो जाता है कि, 15 प्रतिशत प्रतिवर्ष से कम दर पर व्याज अथवा कम अवधि के लिए व्याज, किसी विशिष्ट मामले में अधिनियम किया जाए तो वह तदनुसार निवेश दे सकता है।

(2) उपधारा (1) के उपर्योग पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, अधिकरण उपयुक्त मामलों में निवेश दे सकता है कि व्याज का विनिर्दिष्ट दर से संदाय किया जायेगा यदि प्रतिकर की रकम एक नियत अवधि के भीतर संदर्भ या जमा कर दी जाती है और जमा करने में व्यक्तिकम होने पर व्याज उक्त अवधि के परे एक उच्चतर दर पर दिया जायेगा।" (पैरा 11.5)

(के. एन. सिंह)

अध्यक्ष

(एस. रंगनाथन)

सदस्य

(पी. एम. बख्तीर)

सदस्य

(चि. प्रभाकर राव)

सदस्य-सचिव

(डी. एन. सदाशिव)

सदस्य

(एम. मार्क्स)

सदस्य

पाद-दिप्पण—अध्याय 12

- इंग्लिश अधिनियम की धारा 1(4), से मिलता हुआ उपर्युक्त यहां उत्तर कारणों से सम्मिलित नहीं किया गया है जिन्हें 111वीं रिपोर्ट के पैरा 5.7 में स्पष्ट किया गया है।
- यह परिभाषा 111वीं रिपोर्ट से संलग्न विशेष के प्रालय की धारा 2 और धारा 4(3) में दी गई परिभाषाओं से मिलत है किन्तु उन्हें समेकित करती है।
- इस विषय में अध्याय 10 में की गई चर्चा देखिए।

उपाध्याय-1

भारत में 1989-91 के दौरान सङ्केत दुर्घटनाओं और उनमें मारे गये व्यक्तियों की संख्या

क्रम संख्या	राज्य/संघ राज्य क्षेत्र	1989		1990		1991	
		दुर्घटनाएं	मारे गये व्यक्ति	दुर्घटनाएं	मारे गये व्यक्ति	दुर्घटनाएं	मारे गये व्यक्ति
1	2	3	4	5	6	7	8
1.	आनंद प्रदेश	13423	4458	16042	5211	17371	5753
2.	ग्रन्थाचल प्रदेश	239	59	233	97	204	36
3.	असम	1956	895	1762	904	1899	867
4.	बिहार	9552	2183	9522	2751	9776	2304
5.	गोवा	1813	169	2205	174	2168	180
6.	गुजरात	23823	3509	23823	4077	24908	4308
7.	हरियाणा	5358	1819	5056	1969	4867	1916
8.	हिमाचल प्रदेश	1060	469	1123	465	1269	414
9.	जम्मू और कश्मीर	3615	491	2326	371	3927	672
10.	कर्नाटक	20902	3655	21992	3901	22438	3979
11.	केरल	16762	1737	20247	1793	21556	1709
12.	मध्य प्रदेश	20265	2709	23492	2793	25096	3089
13.	महाराष्ट्र	59045	5785	56982	5427	59418	9884
14.	मणिपुर	430	129	472	106	369	87
15.	मेघालय	646	98	540	133	450	104
16.	मिजोरम	98	38	80	38	74	28
17.	नागालैंड	263	42	237	64	57	40
18.	उड़ीसा	5737	1171	6069	1193	6171	1300
19.	पंजाब	1622	819	1621	1133	1483	1019
20.	राजस्थान	9593	3023	10456	3465	11046	3736
21.	सिक्किम	105	26	115	26	137	34
22.	तमिलनाडु	32962	6299	34634	6663	32522	6406
23.	त्रिपुरा	449	136	408	113	371	102
24.	उत्तर प्रदेश	13696	6130	16318	7639	15960	7936
25.	पश्चिम बंगाल	15946	2094	16375	2600	16041	2559

मा.स.म.रि.रो. न.दि./955 एल.जे. एंड सी.ए./95—से—II—प.गु.दि. दिनांक 17-3-99—500 प्रति

Price : Inland : Rs. 293.00

Foreign : ₹ 431 पै 6.85

प्रबन्धक, भारत सरकार मुद्रणालय, रिंग रोड, नई दिल्ली-110064 द्वारा प्रसिद्धि
तथा प्रकाशन-नियंत्रक, भारत सरकार, सिविल लाइन्स, दिल्ली-110054 द्वारा प्रकाशित।

1999